पश्चात्ताप

(श्रीराम के संवेदनशील हृदय का सशक्त प्रस्फुटन)

रचयिता :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी.

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८, २७१००७८, २७०७१०८

फैक्स : ७०४१२७ तार : त्रिमूर्ति

प्रथम संस्करण : ५ हजार
(२५ मई, २००६)
द्वितीय संस्करण : ५ हजार
(१२ जुलाई, २००६)
तृतीय संस्करण : ५ हजार
(२५ मार्च, २००७)
योग : १५ हजार

मूल्य : सात रुपये

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कंप्यूटर्स
ए-४, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईस गोदाम, जयपुर

विषय सूची

१. अपनी बात	५
२. दो शब्द	११
३. पश्चात्ताप	१३
४. मनीषियों की दृष्टि में –	४०
५. पश्चात्ताप : एक समीक्षात्मक अध्ययन	४९

प्रकाशकीय
(तृतीय संस्करण)

सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की नवीनतम कृति 'पश्चात्ताप' का अल्पकाल में ही यह तृतीय संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। भगवान श्रीराम के संवेदनशील हृदय की मानसिकता का सजीव चित्रण करने वाली इस कृति का दस माह की अल्प अवधि में ही यह ५ हजार का तृतीय संस्करण प्रकाशित होना गौरव का विषय है। विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के प्रथम संस्करण का प्रकाशकीय दृष्टव्य है।

इस संस्करण की कीमत कम करने में हमें जिन महानुभावों का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है उनका हम हृदय से आभार मानते हैं। महत्वपूर्ण कृति के लेखन हेतु लेखक के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

– ब्र. यशपाल जैन

प्रकाशकीय

लगभग साढ़े पाँच दशक पहले लिखी गई डॉ. भारिल्ल की नवीनतम कृति **'पश्चात्ताप'** नामक काव्य को प्रकाशित करते हुए हमें विशेष प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

इस कृति का प्रकाशन हो – अनेक वर्षों से ऐसा मेरा भाव था। यह भावना भी विशिष्ट बलवती थी कि डॉ. भारिल्ल इसे एकबार फिर से देखकर आवश्यक परिवर्द्धन व परिवर्तन भी करें।

ऐसा सहज योग अब बन पाया है कि डॉ. भारिल्ल ने इस काव्य को बारीकी से आद्योपान्त देख लिया और कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन भी कर दिये।

मैं चाहता था कि इसके प्रकाशन के पूर्व इसके सम्बन्ध में मनीषियों का अभिप्राय प्राप्त करना चाहिये; अतः प्रेसकॉपी तैयार कर कुछ मनीषियों के पास भेजी गई। प्राप्त सभी अभिप्राय अनुकूल ही रहे, जो कृति के अन्त में दिये गये हैं। उन सभी से प्रोत्साहन पाकर हम इसे प्रकाशित कर रहे हैं।

प्रो. संजय ने इस कृति पर एक समीक्षात्मक विस्तृत लेख लिखा है, जिसे हम अन्त में दे रहे हैं।

डॉ. भारिल्ल का अप्रकाशित पुराना साहित्य; जिसमें महाकाव्य, कहानियाँ आदि हैं; वह सब मेरे पास सुरक्षित हैं।

यद्यपि मैंने डॉ. साहब से इस अप्रकाशित साहित्य को शीघ्र ही प्रकाशित करने का अनेक बार आग्रह किया; तथापि मुझे उनका उतना उत्साह नहीं दिखा, जितना मुझे है।

एक बार मैंने विशेष आग्रह के साथ कारण पूछा तो मुझे उत्तर मिला – ''उस साहित्य को एकबार मनोयोगपूर्वक सूक्ष्मता से देखने के बाद ही प्रकाशित करना चाहिये। साहित्य प्रकाशन में शीघ्रता करना मुझे पसंद नहीं।''

उनका यह उत्तर सुनकर मैं मौन रहा।

वैसे 'तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल' (अभिनंदन ग्रंथ) जिसके दो संस्करण छप चुके हैं तथा जो डबल डेमी साइज के आकार में ७०० पृष्ठ का है, जिसमें उनकी प्रकाशित-अप्रकाशित साहित्यिक कृतियों पर अनेकों लेख हैं। वह विशाल ग्रन्थ वर्तमान में बिक्री विभाग में उपलब्ध भी है।

उक्त ग्रंथ के संपादन के कार्यकाल में मैंने उनके सभी अप्रकाशित साहित्य को अच्छी तरह देखा है।

इस काव्य का स्वरस कुछ अलग ढंग का ही है। पुण्य-पाप के फल की बात तो इसमें दी ही गई है, कुछ छन्दों में अध्यात्म की भी चर्चा है। रसिक पाठक इस साहित्यिक कृति का रसास्वादन करें एवं अपने मन की प्रतिक्रिया मेरे पते पर पत्र या फौन द्वारा अवश्य भेजें।

उसी समय लिखी गईं और भी अनेक कृतियाँ इसीप्रकार पड़ी हुई हैं। इस कृति पर पाठकों की प्रतिक्रिया प्राप्त होने पर उन्हें प्रकाशित करने के बारे में सोचेंगे।

इस कृति को आप तक अत्यल्प मूल्य में पहुँचाने में सहयोग जिन दातारों ने दिया है, उनकी सूची इसी में अन्यत्र प्रकाशित है; उन सबको हार्दिक धन्यवाद के साथ-साथ प्रकाशन विभाग के प्रभारी अखिल बंसल को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इसके सुन्दरतम मुद्रण की व्यवस्था की है।

लेखक के महत्वपूर्ण उपलब्ध प्रकाशनों की सूची भी संलग्न है। उनके विभिन्न विषयों पर हुये प्रवचनों के केसैट और सी.डी. भी उपलब्ध हैं।

– ब्र. यशपाल जैन, *एम.ए.*
प्रकाशन मंत्री, श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर (राज.)

अपनी बात

भारतीय जनमानस में राम और सीता की जोड़ी आज भी तिल में तेल के समान रमी हुई है। विपत्तियों में भी धैर्य न खोनेवाली सीता और विषम परिस्थितियों में भी जन-जन के मन में समा जाने वाले राम का जीवन मेरे हृदय को बचपन से ही आन्दोलित करता रहा है।

यह काव्य जन-जन के मन में समाये राम के कोमल हृदय के एक कोने में झाँकने का प्रयास है। मैं नहीं जानता कि इसमें मुझे कितनी सफलता मिली है; पर मेरा हृदय यह चाहता है कि लोगों के मन में राम की छवि एक कठोर शासक के रूप में नहीं, अपितु मानवीय संवेदनाओं से सम्पन्न, कोमल, सहृदय सम्राट रूप में प्रतिष्ठित हो। इसीप्रकार सीता का स्वरूप भी मानव-समाज द्वारा प्रताड़ित असहाय नारी के रूप में नहीं, अपितु विपत्तियों के बीच भी संतुलन न खोनेवाली, तत्त्वज्ञान से सम्पन्न, उस नारी के रूप में प्रतिष्ठित हो कि जो देवी के साथ-साथ मानवी भी है, अनुगामिन के साथ-साथ वैरागिन भी है।

अधिक क्या कहूँ ? यह काव्य मेरे हृदय में बसे राम का प्रकटीकरण है। यह राम पूर्णतः मेरे राम हैं; उन्हें किसी धार्मिक विचारधारा विशेष में आबद्ध राम के रूप में नहीं, मेरे मानस के मुक्त आकाश में विचरण करनेवाले राम के रूप में देखा जाना चाहिये।

ध्यान रहे, यह कृति मेरी रचना है, केवल लेखन कार्य नहीं। तात्पर्य यह है कि मैंने इसे कहीं से उठाकर हूबहू प्रस्तुत नहीं कर दिया है; इसमें मेरा चिंतन है, मंथन है।

यद्यपि यह मेरे राम हैं, तथापि इसके कथाभाग में आचार्य रविषेण के पद्मपुराण को आधार बनाया गया है; पर सब कुछ वहाँ

से ही नहीं, कुछ-कुछ यहाँ-वहाँ से भी लिया गया है। जैसे धोबी-धोबिन का प्रसंग रविषेणीय पद्मपुराण में नहीं है; तथापि यह लोक का बहुचर्चित प्रसंग है[१]।

बात उस समय की है जब रावण को परास्त कर राम सीता को लेकर अयोध्या वापस आ जाते हैं और वर्षों तक सीताजी के साथ सुखपूर्वक रहते हैं। इसी बीच सीताजी गर्भवती हो जाती हैं।

इसी समय धोबी-धोबिन के नाम से लोक में इस बात पर अंगुलि उठाई जाने लगती है कि छह मास तक रावण के यहाँ रही हुई सीता को राम ने अपने घर में रख लिया है। इसका अनुकरण करके और लोग भी ऐसा ही करेंगे।

इस लोकापवाद के कारण श्रीराम ने कृतान्तवक्र सेनापति के द्वारा यात्रा के बहाने सीता को भयंकर वन में छुड़वा दिया।

वहाँ पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजंघ ने सीता को धर्म की बहन बनाकर अपने घर में आश्रय दिया। वहीं पर लव-कुश का जन्म हुआ।

जब लव-कुश युद्धविद्या में पारंगत और तरुणावस्था को प्राप्त हुए, तो एक दिन नारद ऋषि ने उन्हें राम-लक्ष्मण जैसे प्रतापी होने का आशीर्वाद दिया और उनके आग्रह पर उन्हें रामकथा सुनाई।

सीता के त्याग का प्रसंग सुनकर वे राम-लक्ष्मण से युद्ध के लिये तैयार हुए। युद्ध हुआ; पर समय पर नारद ने राम को बताया कि ये सीता से उत्पन्न तुम्हारे ही सुयोग्य सुपुत्र हैं।

इसप्रकार उनका स्नेह-मिलन हुआ। तत्पश्चात् सीताजी को भी बुलाया गया, पर राम ने उन्हें स्वीकृत करने से इन्कार कर दिया

१. उक्त सन्दर्भ में विशेष जानकारी के लिये प्रयाग विश्वविद्यालय की हिन्दी प्रकाशन परिषद् से प्रकाशित फादर कामिल बुल्के के शोधप्रबन्ध ''रामकथा : उत्पत्ति और विकास'' के पृष्ठ ६९३ देखें।

तथा अपनी पवित्रता साबित करने को कहा। परिणामस्वरूप अग्निपरीक्षा हुई; जिसमें सीताजी सफल हो गईं।

इसके उपरान्त सीता घर में रहने को राजी नहीं हुईं। यद्यपि राम ने उन्हें बहुत मनाया; पर वे दीक्षा लेकर साध्वी बन गईं।

तत्पश्चात् राम के हृदय में जो मंथन चला, उसी को प्रस्तुत किया गया है - इस कविता में। यह राम के उद्वेलित हृदय का चित्रण करनेवाली एक लम्बी कविता है।

राम और सीता पर न जाने कब से लिखा जाता रहा है और कब तक लिखा जाता रहेगा। विभिन्न लेखकों ने उन्हें विभिन्न रूपों में देखा, परखा और प्रस्तुत किया है; इसप्रकार न मालूम राम कितने रूपों में प्रस्तुत हो गये हैं - वाल्मीक के राम, तुलसी के राम आदि।

मैंने इस काव्य में कुछ कहने की कोशिश की है, आशा है, वह मूल संदेश आप तक पहुँचेगा।

यह काव्य सीता की अग्निपरीक्षोपरान्त सीता के दीक्षा ले लेने के पश्चात् राम के मन में हुए ताप (संताप) का प्रस्फुटन है, इसलिये पश्चात् + ताप अर्थात् पश्चात्ताप है।

मेरा सोचना यह है कि आखिर बात तो यही थी न कि जब धोबिन बलात् पर घर में कुछ दिन रहकर वापस आई, तो धोबी ने उसे घर में रखने से इन्कार कर दिया। महासती सीता का उदाहरण देने पर जब उसे घर में रख लिया गया तो समाज ने धोबी का बहिष्कार कर दिया। अब उसने राम की नजीर दी - कि उन्होंने भी तो रावण के यहाँ रही सीता को घर में रख लिया है, फिर मेरा बहिष्कार क्यों?

यदि उक्त बात के आधार पर सगर्भा सीता को वनवास दिया गया तो फिर राम को क्यों नहीं ? उन्होंने भी तो कुछ दिन को ही सही, पर परघर में रही सीता को अपने घर में रख ही लिया था और उसी समय सीताजी गर्भवती भी हुईं थीं। यदि परघर रही हुई स्त्री को घर में रखना अपराध है तो फिर राम से यह अपराध हो ही गया था। पर बात यह है कि राम तो दण्ड देने वाले थे, राजा थे, समर्थ थे और **समरथ को नहीं दोष गुसाईं।** जो भी हो.....। गंभीरता से सोचने की बात यह है कि सीता के निर्जन वनवास से जनता में क्या सन्देश गया? यही न कि ऐसी महिलाओं को भयंकर वन में छुड़वा दिया जाना चाहिये।

यद्यपि जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति एक ही होता है; तथापि उसके लम्बे जीवन में बचपन भी होता है, जवानी भी होती है और वृद्धावस्था भी होती ही है। बचपन में अज्ञान से और जवानी में जवानी के जोश से अनेक ऐसे कार्य हो जाते हैं, जिन्हें अच्छा नहीं कहा जा सकता, अच्छा नहीं माना जा सकता।

जीवन के अन्तिम समय में वे व्यक्ति कितने ही महान क्यों न हो गये हों; पर जनता उन्हें विभक्त करके नहीं देख पाती; उन्हें समग्र रूप में ही देखती है। यही कारण है कि अपने जीवन के आरंभिक काल में हुई जिन गलतियों के लिए वे महापुरुष जीवन भर पछताते रहे; हम अपने अज्ञान से उन गलतियों को भी गुण मानकर, न केवल उनके गीत गाते रहते हैं, अपितु उन्हें अपना आदर्श मानकर जीवन में उतारने की कोशिश भी करते हैं; उन्हीं गलतियों को अपने जीवन में भी दुहराने का प्रयत्न करते हैं।

सीताजी की अग्निपरीक्षा ने मात्र सीता के सतीत्व को ही नहीं,

उनके साथ हुये अन्याय को भी उजागर किया था, प्रमाणित किया था।

यद्यपि सामान्यजनों का ध्यान इस ओर नहीं जाता है; पर श्रीराम सामान्यजन तो थे नहीं। वे तो इसे गहराई से अनुभव कर रहे थे। श्रीराम के इस अनुभव का नाम ही है – पश्चात्ताप काव्य।

श्री राम द्वारा सीताजी को दिये गये बनवास और उसके बाद हुई अग्नि-परीक्षा के उपरान्त उत्पन्न स्थिति में राजा राम के हृदय में जो विचार आते हैं, जो पश्चात्ताप होता है, उन विचारों को ही अभिव्यक्ति दी गई है इस पश्चात्ताप नामक काव्य में।

उक्त मंथन में कुछ प्रकाश आज की समस्याओं पर भी सहज ही पड़ गया है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह काव्य मैंने १७ वर्ष की उम्र में लिखा था; जो आज ७१ वर्ष की उम्र में छप रहा है। एक-दो वर्ष पड़े रहने के बाद, मैंने अपने हाथ से इसकी एक प्रेस कापी तैयार की थी, जिस पर १२ दिसम्बर १९५४ ई. की तारीख डली है।

मेरे साहित्य पर शोध-कार्य करते हुये डॉ. महावीर प्रसाद जैन को वह कापी प्राप्त हो गई। उन्होंने अपने शोध प्रबंध में उसके सन्दर्भ में चर्चा की, समीक्षा भी की। उसके बाद से ही इसके प्रकाशन की माँग जोर पकड़ने लगी; पर हमारे अभिन्न साथी ब्र. यशपालजी यह चाहते थे कि मैं उसे एक बार देख लूँ, जिससे ऐसी कोई बात न चली जाय जो सिद्धान्तविरुद्ध हो या किसी मनोमालिन्य का कारण बन जाये। इसी उधेड़बुन में यह कृति अबतक यों ही पड़ी रही, न मुझे समय मिला और न यह प्रकाशित हो सकी।

अब इसके प्रकाशन का समय आया है। मैंने इसे आद्योपान्त

देखा है, मामूली संशोधन व सम्वर्द्धन भी किया है, आवश्यकता के अनुरूप कतिपय नये छन्द भी जोड़े हैं; पर उसके मूल स्वरूप से छेड़छाड़ नहीं की। अतः अब यह लगभग उसी रूप में प्रस्तुत है।

इस छोटी सी कृति में क्या है – अध्ययन करने पर यह तो यह कृति स्वयं ही बतायेगी। आशा है आप भी इसमें व्यक्त मेरे विचारों से सहमत होंगे। कदाचित् सहमत न भी हों तो भी कोई बात नहीं, पर इसमें व्यक्त विचारों पर गंभीरता से विचार तो करेंगे ही।

विज्ञजनों से मेरा अनुरोध है कि इसे १७ या ७१ की दृष्टि से न देखकर, इसमें व्यक्त विचारों और उनके प्रस्तुतीकरण को ध्यान में रखकर इसका मूल्यांकन करें। आपकी प्रतिक्रिया जानकर मुझे प्रसन्नता तो होगी ही, मार्गदर्शन भी प्राप्त होगा।

दस माह में ही दस हजार के दो संस्करण समाप्त हो गये और अब यह संशोधित तीसरा संस्करण है। इसमें डॉ. हीरालालजी माहेश्वरी के महत्त्वपूर्ण सुझावानुसार कतिपय संशोधन किये गये हैं। 'अपनी बात' में संक्षेप में जैन मान्यतानुसार राम की कहानी देना जरूरी है; अन्यथा जो रामकथा लोक में प्रचलित है, उसके सन्दर्भ में भ्रम उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि अग्निपरीक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न मान्यतायें हैं। कुछ ग्रन्थों में रावण के यहाँ से लाने के पहले ही अग्निपरीक्षा हो गई थी, तो कुछ के अनुसार हुई ही नहीं थी। इतना होने पर भी गर्भवती सीता के त्याग की बात तो प्राय: सर्वत्र ही पाई जाती है।

इस कृति के सम्बन्ध में डॉ. माहेश्वरीजी ने 'दो शब्द' लिखने की कृपा की है, तदर्थ मैं उनका बहुत-बहुत आभारी हूँ।

२१ मार्च, २००७ **– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल**

दो शब्द

– डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, एम.ए., एल्.एल्.बी.; डी.फिल्., डी.लिट्., साहित्यरत्न, साहित्यालंकार
[सेवानिवृत्त – एसोसियेट प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर]

'पश्चात्ताप' की कथा का संक्षिप्त मूलाधार कवि ने 'अपनी बात' में दे दिया है। रामकथा और रामकथा का यह अंश यत्किंचित् परिवर्तित रूप में जैन शास्त्रों में मिलता है। सामान्य जैन और जैनेतर पाठक के मन में कथा का यह आधार रहना चाहिए; ऐसा होने पर वह कविता का मूल सन्देश और उसमें वर्णित विभिन्न मनोदशाओं को भलीभाँति हृदयंगम कर सकेगा।

यह मानसिक उद्वेग, अन्तर्द्वन्द्व, तर्क-वितर्क और संवेदनाओं की प्रभावपूर्ण, भावात्मक लम्बी कविता है। सती सीता की अग्नि-परीक्षा हुई और वे सब कुछ त्याग कर वन में चली गईं। तब भगवान राम सहित सबकी आँखें भर आईं। इसी बिन्दु से कविता शुरू होती है। श्रीराम के मन में पूर्व में घटी घटनाओं के सन्दर्भ और दृश्य उजागर होते हैं। शनैः शनैः वे गहन होते जाते हैं और उनका हृदय पश्चात्ताप की मौन वेदनाओं से भर उठता है।

धोबी-धोबिन के कथन को सुनकर लोकापवाद के कारण गर्भवती अकेली सीता को वन में छुड़वाना, लव-कुश के साथ युद्ध के समय नारद से उनको, उन्हीं के पुत्र होने का ज्ञान; सीता की अग्नि-परीक्षा, परीक्षा में सफल होने पर सीता का प्रव्रज्या लेने हेतु वन-प्रस्थान इत्यादि घटनाएँ उनके मानस में साकार हो जाती हैं।

वन जाते समय सीता की अत्यन्त विनययुक्त किन्तु मर्मभेदी सीख, कि – नाथ ! आपने निन्दा सुनकर मुझे तो छोड़ दिया, किन्तु धर्म की निन्दा सुनकर उसे मत छोड़ देना :

(धर्म की सुनकर निन्दा नाथ, छोड़ मत देना तुम उसको (२८)

– राम की शोकाग्नि और पश्चात्ताप को घनीभूत कर देती है।

वे मन में सीता को छोड़े जाने के मूल कारण – धोबिन के कथन को भी सही ठहराते हैं; 'उसने तो अपनी सफाई में सीता का मात्र उदाहरण ही तो दिया था, आक्षेप तो नहीं लगाया था' :

धोबिन ने अपनी रक्षा में सीता की दी थी बस नजीर[१]।

कविता में जहाँ भगवान राम का मानवीय रूप मुखरित हुआ है, वहीं सीता की पवित्र परमोज्ज्वल छवि भी स्पष्टतः उभरी है। राम का पश्चात्ताप और सीता की मौन और किंचित् मुखर पीड़ा पाठक को झकझोरती है। बस, यहीं कवि का मूल मन्तव्य पूरा होता है।

कवि ने एक नितान्त संवेदनशील बिन्दु की ओर इशारा करते हुए उसे वाणी दी है। पूरी कविता पढ़ने पर पाठक अनेक भावनाओं से अभिभूत हुए बिना नहीं रहता। यही इसकी मजबूती है, सफलता है; और यह कविता श्री (अब डॉक्टर) भारिल्लजी ने सत्रह साल की अवस्था में लिखी थी, (अपनी बात) इसलिए; उनकी 'कूक'[२] पर ही ध्यान दिया जाना चाहिए, न कि 'चूक' पर।

यदि तब से वे अपनी काव्य-रचना-परम्परा चालू रखते, तो निस्संदेह आज काव्य-क्षेत्र में उनका नाम अत्यन्त जाना-पहचाना होता।

इस कविता में उनके आज के जैन तत्त्व-मीमांसक के तार्किक स्वरूप की झलक भी देखी जा सकती है। धोबी-धोबिन, सामाजिक व्यवस्था, लोकमत इत्यादि के विषय में उनके तर्क-वितर्क और निर्णय के संकेत इसकी पुष्टि करते हैं।

जैन काव्यों के कथानकों की कई रूढ़ियाँ है, जिनमें तीन का उल्लेख और प्रभाव तो बहुधा देखने को मिलता है : (१) पूर्व भव-ज्ञान और कथन, (२) धर्म-प्रेरणा और (३) अन्ततः जिन-दीक्षा में परिणति। इस कविता में भी न्यूनाधिक रूप में इन तीनों का संकेत-उल्लेख है। कविता का समापन भी सीता के जिन-दीक्षा-संकल्प के साथ होता है।

ऐसी प्रभावी और सरल बोलचाल की भाषा में लिखित कविता के लिए डॉ. भारिल्ल बधाई के पात्र हैं। मैं डॉ. भारिल्ल के कर्मठ, सुखी-स्वस्थ, दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ। **– हीरालाल माहेश्वरी**

२८-०२-०७

१. नजीर – फारसी, स्त्रीलिंग शब्द है। २. अच्छाई, कथन का सार, भावना, ध्वनि।

पश्चात्ताप

(शृंगार छन्द)

(१)

प्रथम धर अरहंतों का ध्यान,
और कर जिनवाणी गुणगान।
सदाचरणों[१] में नित अम्लान,
किया जिन-जिन ने जीवनदान[२]।।

(२)

नमन कर उन गुरुओं को आज,
राम के मन की गहरी छाप।
राम के अन्तर का आताप,
राम के मन का पश्चात्ताप।।

(३)

राम के मन का पश्चात्ताप,
सती सीता का यह अनुताप।
कहूँ कैसे किन शब्दों में,
प्रजा के मन का यह संताप।।

(४)

समाई सीता रग-रग में,
बस रहे रग-रग में श्री राम।
करूँ मैं वन्दन अभिनन्दन,
रमूँ नित अपने आतम राम।।

१. रत्नत्रय या सदाचार में २. जीवन लगा दिया

(५)

प्रजा से सुन लांछन की बात,
किया यदि रामचन्द्र ने न्याय।
हुआ पर जनक–सुता के साथ,
महा अन्याय महा अन्याय।।

(६)

हो गई अग्निपरीक्षा आज,
खड़ा था पूरा अवध[१] समाज।
शील ने रखी सती की लाज,
प्रेम से व्याकुल थे रघुराज।।

(७)

सोचते थे मन में रघुवीर,
खड़े थे जैसे हों तस्वीर।
मनीषा[२] करती तर्क–वितर्क
हो रहे थे वे बहुत अधीर।।

(८)

मुझे था भय कि मोह में आज,
प्रजा के साथ न हो अन्याय।
इन्हीं संकल्प–विकल्पों में,
हो गया यह कैसा अन्याय।।

(९)

न्याय करना न आवे जिसे,
न्यायप्रिय कहता उसे जहान[३]।
स्वजन को दे देने से दण्ड,
नहीं हो जाता कोई महान।।

१. अयोध्या या अवध नामक देश/प्रदेश २. बुद्धि ३. दुनिया

(१०)

किसी को कैसे दे वह दण्ड,
सत्य की नहीं परख है जिसे।
बिठा कैसे देते हैं लोग,
न्याय के सिंहासन[१] पर उसे।।

(११)

दिया है निरपराध को दण्ड,
न्यायप्रिय मुझको मत कहना।
न्याय है यह अथवा अन्याय,
न्याय है मुझे आज सपना।।

(१२)

प्रजाजन में कैसा अज्ञान,
भरा है हे मेरे भगवान।
चुने चाहे जिसको नेता,
नहीं जो उचित दण्ड देता[२]।।

(१३)

किन्तु है यह कसूर किसका,
हमारा अथवा जनगण का।
उन्होंने अपराधी को चुना,
किन्तु मैं क्यों कहने से बना।।

(१४)

हमारा ही है इसमें दोष,
हुआ जो जाने–अनजाने।
प्रजाजन कैसे पहचाने,
नहीं हम अपने को जानें।।

१. पुराने जमाने में मुख्यरूप से राजा ही न्यायाधीश होते थे।
२. यद्यपि राम को जनता ने नहीं चुना था, तथापि उनके चुने जाने में जन–जन की अनुमति अवश्य थी। लेखक के इन विचारों को आज के सन्दर्भ में भी देखा जाना चाहिए।

(१५)

जा रही वैदेही[१] वन में,
राम उद्विग्न हुये मन में।
करें क्या समझ नहीं आवे,
राम सोचे मन ही मन में।।

(१६)

उदर में था लवकुश जोड़ा,
तभी निर्जन वन में छोड़ा।
प्रथम मैंने नाता तोड़ा,
आज उसने मुखड़ा मोड़ा।।

(१७)

नहीं मैं जाने ना दूँगा,
आज मैं उसको रोकूँगा।
सगद्गद् बोले राम नरेश,
रुंधा[२] था कण्ठ गिरा निश्शेष।।

(१८)

न मैंने तुमको पहचाना,
मुझे शोकानल ने घेरा।
सुनो अपराधी हूँ सीते!,
करो अपराध क्षमा मेरा।।

(१९)

कहा इतना ही सीता ने,
नहीं अपराध तुम्हारा है।
करमफल पूरव का जानो,
करमबल सबसे न्यारा है।।

१. सीता २. गले से आवाज नहीं निकलना

(२०)

विगतभव[१] में जो बाँधे कर्म,
वही फल देते इस भव में।
किया होगा कोई अपराध,
भयंकर मैंने गत भव में।।

(२१)

उसी के फल में यह संयोग,
मिला होगा, न आपका दोष।
'करे सो भरे' यही है सत्य,
आपका इसमें कोई न दोष।।

(२२)

अधिक क्या कहूँ, हुआ सो हुआ,
अरे जाने दो बीती बात।
परन्तु अब ऐसा कुछ करें,
न होवे फिर ऐसा आघात।।

(२३)

आप न करें विकल्प विशेष,
सभी कुछ निश्चित हैं संयोग।
बात बस इतनी है हे नाथ!,
मिला देते सत् का संयोग[२]।।

(२४)

भेज देते आर्याश्रम[३] में,
यही था क्या उपाय[४] बस एक।

१. पूर्वभव २. सत् का संयोग = सत्समागम
३. आर्यिकायों के आश्रय में
४. असहाय अकेली भयंकर वन में छुड़वा देना

धर्मपालन होता रहता,
जरा तुम सोचो कुछ स्वयमेव ।।

(२५)

यदि था मन में कुछ सन्देह,
जलाकर अग्नि शिखा की आँच ।
और देकर कठोर आदेश,
प्रभो तत्क्षण कर लेते जाँच ।।

(२६)

सत्य की होती है जब जाँच,
नहीं आती है उसको आँच ।
जाँच का अवसर भी न दिया,
किया क्यों यह असीम अन्याय ।।

(२७)

हुआ जो आज, उसी दिन क्यों,
नहीं हो सकता था हे नाथ ।
न होती मैं अनाथ इस तरह,
किन्तु कुछ भी न! सोचा नाथ ।।

(२८)

अरे निन्दा सुनकर मेरी,
नाथ! त्यागा तुमने मुझको ।
धर्म की सुनकर निन्दा कभी,
त्याग मत देना तुम उसको ।।

(२९)

त्यागने से मुझको हे नाथ !,
हुआ होगा थोड़ा आताप ।

त्याग देने से आतम धर्म,
मिलेगा भव–भव में संताप ।।

(३०)

हुआ सो हुआ किन्तु अब तो,
जगत की वणिकवृत्ति[१] लखकर[२] ।
नहीं रहना है इसमें मुझे,
धरूँगी जिनदीक्षा हितकर ।।

(पद्धरिका छन्द)

(३१)

ऐसा कह जनक सुता चल दी,
माँ–माँ कह लवकुश चिल्लाये ।
वे रुंधे गले से बोले हे माँ!,
हमें छोड़कर क्यों जाये? ।।

(३२)

हमने क्या किया दोष जननी,
जो हमें छोड़कर तुम जातीं ? ।
हम रहे सदा ही आज्ञा में,
क्यों कर हमको तुम बिसराती ? ।।

(३३)

सौमित्र[३] भरत भी आ पहुँचे,
शत्रुघ्न खड़े थे सिर नाये ।
लौटो–लौटो हे जगजननी !,
क्यों हम पर नहीं दया आये? ।।

---

१. बनियों जैसी स्वार्थी प्रवृत्ति २. देखकर ३. सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण

(३४)

यह सुनकर सीता देवी यों,
मृदु स्वर में धीरे से बोलीं।
नाते–रिश्ते सब झूठे हैं,
इनमें उलझी दुनिया भोली।।

(३५)

नातों का ताप न तपना है,
नाते न मुझको अब भायें।
नाते ही जग के बन्धन हैं,
ये सभी जगत को भरमायें।।

(३६)

जन को निहार[१] जग मरता है,
फिर बार–बार देखा करता।
मुझको निहार लंकेश मरा,
तप धारेगी अब जनकसुता।।

(३७)

यह कह कर फेरी नेत्र किरण,
मानो सूरज की किरण मुड़ी।
निर्जन जंगल की ओर बढ़ी,
थी देख रही सब मही[२] खड़ी।।

(३८)

पृथिवीमती आर्या के समक्ष,
सीता ने व्रत स्वीकार किये।
बस एक श्वेत साड़ी रखकर,
सब वस्त्राभूषण त्याग दिये।।

१. देखकर २. पृथ्वी; यहाँ पृथ्वी वासी।

(३९)

पृथिवीमति की अनुगामिन हो,
मानो पृथिवी में समा गईं।
बस इसीलिये जग कहता है,
सीता पृथिवी में समा गईं।।

(४०)

देहान्त समय तो सबका तन,
मिट्टी में ही मिल जाता है।
सीता देवी का कोमल तन,
भी मिट्टी में मिल जाता है।।

(४१)

है अरे नयापन इसमें क्या,
मिट्टी मिट्टी में समा गई।
सीता माता का शुद्धातम,
तो शुद्धातम में समा गया।।

(४२)

जन–जन की आँखें भर आईं,
अर रोम–रोम हो गये खड़े।
सीतेश प्रभु की आँखों से,
टपटप दो आँसू टपक पड़े।।

(४३)

वे आँसू थे या मुक्तामणि,
या राम हृदय–परिचायक थे।
या प्रेमलता सिंचक जल थे,
घनश्याम[१] राम के द्रावक[२] थे।।

१. काले मेघ २. हृदय पिघला देनेवाले

(४४)

या सीता प्रेम विसर्जन था,
या श्रद्धांजलि का अर्पण था।
दो मोती राम के मानस के,
सीता को आज समर्पण था।।

(४५)

अब थे विचारते राम अहो,
क्या जीवन जनता का मन है।
जनता को चाहे खुश करना,
तो न्याय नहीं करता जन है।।

(४६)

वन में उसका अपहरण हुआ,
इसमें उसका अपराध न था।
वह लंका में छह मास रही,
पर मन तो उसका साथ न था।।

(४७)

जंगल में उसकी रक्षा का,
उत्तरदायित्व हमारा था।
इसमें उसका था क्या कसूर ?,
उसने तो हमें पुकारा था।।

(४८)

पर हमने इसके बदले में,
उसको निर्जन वनवास दिया।
क्या यही न्याय है रामचन्द्र !,
हमने इसमें क्या न्याय किया? ।।

(४९)

जन नायक तो उसको कहिये,
जो न्याय तुला पर तोल सके।
जनता के मन को न देखे,
बस न्याय नेत्र ही खोल सके।।

(५०)

जो न्याय नहीं कर सकता वह,
कैसा अधिकारी शासन का ?
परित्यक्ता भी फटकार सके,
वह राजा नहीं प्रजाजन का।।

(५१)

यदि न्याय पक्ष अपना सच हो,
चाहे जनगण विद्रोह करे।
चाहे सुमेरु भी हिल जाये,
पर नहीं न्याय से वीर फिरे।।

(५२)

लोकापवाद से डरकर के,
है सत्य छिपाना कायरता।
किसकी जग निन्दा नहीं करे,
निन्दा से डरना पामरता।।

(५३)

बहुमत का कहना सच्चा है,
बहुमत कह दे कि पाप करो।
क्या पाप न्याय कहलायेगा,
तो दीन हीन असहाय मरो।।

(५४)

सीता–सतीत्व में शंका थी,
तो क्यों उसको मैं घर लाया।
सीता यदि परम पुनीता[१] थी,
तो क्यों जनमत से घबराया।।

(५५)

जनता क्या जाने सीता को,
शायद उसको विश्वास न हो।
मुझको था जब पूरा यकीन,
क्यों मुझको अब संताप न हो।।

(५६)

सीता–सतीत्व का जनता को,
विश्वास दिलाना था मुझको।
जो अग्नि–परीक्षा आज हुई,
स्वीकृत होती उस दिन उसको।।

(५७)

देना नजीर[२] न्यायालय में,
तो है कोई अपराध नहीं।
अपने बचाव में कुछ कहना,
क्या जनजन का अधिकार नहीं ?।।

(५८)

आदर्श राम थे पतियों के,
उनकी नजीर दी पतियों ने।
आदर्श जानकी सतियों की,
उनकी नजीर दी सतियों ने।।

१. पवित्र २. अदालत में पुराने फैसलों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करना।

(५९)

इस जग में अपनी रक्षा में,
सारी दुनियाँ देती नजीर।
धोबिन ने अपनी रक्षा में,
सीता की दी थी बस नजीर।।

(६०)

आरोप जानकी देवी पर,
उसने तो नहीं लगाया था।
उसने तो घर में रहने का,
अपना अधिकार जताया था।।

(६१)

हम धोबिन को बदनाम करें,
इसमें उसका कुछ दोष नहीं।
उस पर भी था संकट भारी,
सीता पर कोई रोष नहीं।।

(६२)

सारा अपराध हमारा है,
धोबी–धोबिन का दोष नहीं।
कह रहे राम मेरे मन में,
धोबी–धोबिन पर रोष नहीं।।

(६३)

रावण के घर में रही हुई,
सीतादेवी को वर्षों तक।
रक्खा था सादर मान सहित,
हमने ही तो अपने घर में।।

(६४)

घर में रखना अपराध यदि,
तो यह अपराध हमारा है ।
पर दण्ड जानकी को देना,
कैसा यह न्याय हमारा है? ।।

(६५)

तो हमने नहीं दिया है क्या,
ऐसा सन्देश जगत जन को ।
छुड़वा दें जन निर्जन वन में,
एकाकी ऐसी[१] नारी को ।।

(६६)

छुड़वाकर सीता देवी को,
जंगल में हमने धोबी को ।
मानों चैलेंज किया अब तुम,
जंगल में छोड़ो धोबिन को ।।

(६७)

हमने झोंका निर्दय होकर,
सीता देवी को ज्वाला में ।
अब तुम भी क्यों हो उदासीन,
धोबिन को झोंको ज्वाला में ।।

(६८)

पर अग्निपरीक्षा बिन घर में,
रखकर धोबी ने न्याय किया ।
पर मैंने सीता को तज कर ।
अन्याय किया अन्याय किया ।।

१. बलात् परघर में रही हुई सीता ।

(६९)

अब क्यों मुझको संताप न हो,
केवल मैं ही अपराधी हूँ ।
हे शोकानल! तू जला मुझे,
मैं इसी सजा का भागी हूँ ।।

(७०)

हे विधि! मैंने अन्याय किया[१],
पर तू अन्याय नहीं करता ।
विकराल अग्नि की ज्वाला को,
सज्जित सरवर क्यों नहीं करता ।।

(७१)

मेरे अपराध दण्ड में भी,
तू अरे देर क्यों करता है ।
तू खूब जला शोकानल में,
रे बन्धु दया क्यों करता है? ।।

(७२)

मैं शोकानल में जल–जलकर,
निष्कीट सुवर्ण[२] खरा हूँगा ।
जितना जल सकूँ जलूँ हे विधि !,
पर जनभय पूर्ण जला दूँगा ।।

(७३)

सीता अब तक परित्यक्ता थी,
पर हुआ आज मैं परित्यक्त ।
सुन लो हे जन–जन कान खोल,
मैं करता हूँ स्पष्ट व्यक्त ।।

१. भाग्य या भाग्यविधाता २. स्वर्ण, सोना

(७४)

अब तक तो समझा था मैंने,
नारी ही होती परित्यक्त।
अन्याय देख कर पतिवर का,
हो जाती वह नर से विरक्त।।

(७५)

नारी का यह वैराग्य प्रेम,
कर देता नर का बहिष्कार।
जिसको जग कहता है अबला,
सबला हो जाती शील धार।।

(७६)

नर जीता हरदम नारी से,
रखता है उस पर स्वाधिकार।
कर्तव्यमुखी नारी पाकर,
कर्तव्यविमुख नर गया हार।।

(७७)

जब सीता को मैं समझाता,
उस दिन की याद मुझे आती।
पर आज देखता हूँ उलटा,
है सीता मुझको समझाती।।

(७८)

नर नारी से पैदा होता,
उससे पाता है नेह मान।
पर अहंकार से भरा स्वयं,
जगजननी का करतापमान।।

(७९)

नारी क्या–क्या न कर सकती,
करता हो जिसको नर महान।
दोनों होएँ जब कर्मवीर,
तब जग होता आदर्शवान।।

(८०)

नारी कोमल को कोमल है,
पर निष्ठुर को निष्ठुर महान।
नर के अनुरूप रही नारी,
जाना मैंने नारी विधान।।

(८१)

राजा की नारी रानी है,
तो महाराजा की महारानी।
नट की नारी को नटी कहें,
मिश्रा की नारी मिसरानी।।

(८२)

दर्जी की नारी दर्जिन है,
तो सेठ की नारी सेठानी।
ठाकुर की नारी ठकुराइन,
मैतर की नारी मितरानी।।

(८३)

मुझ से[1] निर्मोही की रानी,
होवेगी निश्चय निर्मोही।
सीता का है अपराध नहीं,
नर होता जो नारी सो ही।।

---

१. उपमा

(८४)

छोड़ा था सीता को मैंने,
असहाय अकेली कानन[१] में।
मुझको सबन्धु[२] वह छोड़ चली,
क्या मृदुता है नारी जन में ?।।

(८५)

नारी कितनी है त्याग–शील,
नररत्नों को पैदा करके।
जो उसको देवे त्रास महा,
चल देती उसको दे कर के।।

(८६)

सीता ने लव–कुश महावीर,
निर्भीक सुसुन्दर सुत जाये।
जिनको देखो रणप्रांगण में,
न लक्ष्मण राम जीत पाये।।

(८७)

ऐसे इन लव–कुश बेटों को,
अपराधी को अर्पित करके।
शोकार्त्त पति को त्याग सती,
बन गई वीर अबला बन के।।

(८८)

कई[३] भगवन् का अपवाद[४] करें,
पर उनको त्याग न देंगे हम।
यदि निन्दक साधु को निन्दे,
तो क्या असाधु कह देंगे हम? ।।

१. वन २. भाइयों के साथ ३. अनेक लोग ४. निन्दा

(८९)

सज्जन सज्जन ही रहें किन्तु,
हम ही दुर्जन कहलायेंगे।
कौआ कोसे यदि शतक[१] बार,
तो नहीं पशु मर जायेंगे।।

(९०)

मेरा अपवाद जगत करता,
क्या छोड़ जानकी देती चल।
यदि नहीं, कहो फिर तुम्हीं राम,
क्या नहीं मूर्खता यह केवल।।

(९१)

जिसका आलोचक[२] कोई न हो,
ऐसा दर्शन या महापुरुष।
इस जगतीतल में दुर्लभ है,
जो सर्वमान्य हो महापुरुष।।

(९२)

तो क्या हम सभी दर्शनों को,
निन्दा के कारण तज देंगे? ।
तथा प्रशंसा के कारण,
चाहे जो कुछ अपना लेंगे? ।।

(९३)

निन्दा करने से मात्र नहीं,
मैं कभी धरम को छोड़ूँगा।
जग कर दे चाहे बहिष्कार,
भगवान से मुख ना मोड़ूँगा।।

१. सौ २. निन्दक

(९४)

लोकापवाद के कारण ही,
सीता को मैंने क्यों छोड़ा।
पाखण्ड नहीं क्या यह मेरा,
लोकापवाद का ले रोड़ा।।

(९५)

चुप क्यों हो आज सुनो लक्ष्मण!,
धिक्कारो मुझको बार-बार।
अन्यायी भूपति को पाकर,
करते क्यों ना तुम असि[१] प्रहार?।।

(९६)

तुम तो अन्यायी नृपगण का,
मद-मर्दन करने वाले हो।
पर आज हो गया क्या तुम को,
जो चुप्पी साधे बैठे हो?

(९७)

मैं नहीं तुम्हारा भाई हूँ,
मैं हूँ अब अन्यायी नायक।
अन्यायी के अपराध दण्ड,
के हेतु चलाओ तुम शायक[२]।।

(९८)

पर आज दया क्यों करते हो?,
तुम समझ मुझे अग्रज भ्राता।
यह पक्षपात क्या नहीं अनुज?,
अन्यायी से तोड़ो नाता।।

१. तलवार २. बाण

(९९)

मेरे बेटे ! सीता-सपूत!!,
सुन लो तुम मेरी एक बात।
लक्ष्मण तो कायर हुये किन्तु,
मुझको मत कहना कभी तात।।

(१००)

मैं अन्यायी क्या कहलाऊँ,
ऐसे वीरों का पिता आज?।
लव कुश लक्ष्मण शत्रुघ्न भरत,
नहिं दिखें न मुझको रुचे राज।।

(१०१)

सब सूना-सूना लगता है,
प्रासाद[१] खण्डहर से लगते।।
अमृत भी विष सा लगे आज,
सब भोग व्याल[२] सम हैं डसते।।

(१०२)

सीते! तुमसे ही पूछ रहा,
निरदये कहूँ अथवा सदये?।
माना मेरा ही है कसूर,
क्या क्षम्य नहीं अपराध प्रिये?।।

(१०३)

नहिं-नहिं मैं भूल गया सीता,
निर्दय होकर तुमको त्यागा।
न्यायोचित दण्ड नहीं भोगूँ,
तो फिर अन्याय महा होगा।।

१. महल २. साँप

(१०४)

छूकर तुमको अपवित्र करूँ,
यह होगा मेरा पागलपन।
तुम अग्निशिखाओं में तपकर,
पा चुकी चिरन्तन उजलापन।।

(१०५)

जाओ! जाओ! सीते! जाओ!!,
मैं आज तुम्हें ना रोकूँगा।
अपनी करनी का पुरस्कार,
पाकर मैं उसको भोगूँगा।।

(१०६)

कैकेई ने वनवास दिया था,
धीर-वीर नर को पाकर।
उसको दुष्टा निर्दया कहें,
जो नररत्नों की रत्नाकर।।

(१०७)

जिसने वैरागी भरतराज से,
वीर सु-सुन्दर सुत जाये।
पर पुत्र प्रेम में अंधी हो,
कर विगत धरोहर वर पाये।।

(१०८)

मैंने अबला अनुगामिन को,
एकाकी जंगल में छोड़ा।
कर्कश शब्दों का है अभाव,
जो कुछ कह दो मुझको थोड़ा।।

(१०९)

जब शीलवती सीतादेवी,
की अग्नि परीक्षा मैंने ली।
तो अब मुझको भी देना है,
भारतवासी जन सुन लो जी।।

(११०)

सीता का कुण्ड मही[१] में था,
मेरा होगा मनमन्दिर में।
उसमें था सूखा काष्ठ भरा,
मेरा तन ही होगा इसमें।।

(१११)

उसमें अग्नि सुलगाई थी,
मैंने शोकानल लगा दिया।
जब कूदीं कुण्ड में सीताजी,
अग्नि ने भी जल बहा दिया।।

(११२)

अगनी को अमल सलिल[२] करके,
उसने पवित्रता दिखला दी।
मैंने शोकाग्नि लगा मन में,
आँसू की बूँदें ढुलका दी[३]।।

(११३)

तेरी पवित्रता का सीता,
मैंने प्रमाण जब पाया था।
अपराध समझ करके अपना,
तुमको अपनाना चाहा था।।

---

१. पृथिवी/पृथ्वी २. जल ३. तात्पर्य यह है कि मैंने भी अग्नि का जल कर दिया, इसप्रकार मैं भी अग्नि परीक्षा में पास हो गया।

(११४)

मेरी पवित्रता पाकर के,
क्यों ना अपराध भुलातीं हो।
कह दो सीते तुम साफ–साफ,
मुझको अब क्यों भरमातीं हो।।

(११५)

हे राम ! राम!! तू बता राम !!,
क्या सोच रहा है तू मन में।
अन्याय प्रमाणित हो जिसका,
कैसी पवित्रता उस जन में।।

(११६)

श्री रामचन्द्र हृदयस्थल में[१],
यह गूँज उठे प्रति छिन–छिन में।
अन्याय प्रमाणित हो जिसका,
कैसी पवित्रता उस जन में!

(११७)

दिग–दिगन्त में गूँज उठे अर,
गूँज उठें सारे नभ[१] में।
अन्याय प्रमाणित हो जिसका,
कैसी पवित्रता उस जन में ?

(११८)

रे अग्निकुण्ड की ज्वालाओं के,
स्वर में थी आवाज यही।
कह रही पगतले पड़ी हुई,
जगधात्री यह पार्थिव्य मही।।

१. श्रीराम के हृदय में २. आकाश

(११९)

जिस तरफ नेत्र उनके जावें,
वे यही देख बस पाते हैं।
अन्यायी राजा को पाकर,
निर्दोष सताये जाते हैं।।

(१२०)

लिखने वाला है नहीं कोई,
अक्षर भी नहीं दीखते थे।
पर बाँच रहे थे रामचन्द्र,
कहते बस सीते–सीते थे।।

(१२१)

सीता निर्दोषी सिद्ध हुई,
मैं ही हूँ दोषी सिद्ध आज।
पहले सीता परित्यक्त हुई,
परित्यक्त हुआ फिर रघुराज।।

(१२२)

अब तक मैं आगे रहा और,
सीता अनुगामी रही सदा।
सीता आगे अब हुई राम,
उसके पीछे है सुनो प्रजा।।

(१२३)

कहना भारत माँ के सपूत,
जब मिलो परस्पर सीताराम।
जिससे तुमको नित याद रहे,
सीता अनुगामी हुए राम।।

(१२४)

साकेत[१] प्रजा के गूँजे स्वर,
सीता–सी नहीं और अन्या।
हे जगत्पूज्य सीता धन्या,
सीता धन्या सीता धन्या।।

(१२५)

सीता देवी सी शीलवती,
धरती पर कोई नहीं अन्या।
सीता धन्या सीता धन्या,
सीता धन्या सीता धन्या।।

(१२६)

न रामचन्द्र–सा राजा भी,
अब तक जगती में हुआ अन्य।
जय रामचन्द्र से राजा की,
शत बार धन्य शत बार धन्य।।

(१२७)

इस पृथ्वीतल की जनता के,
हैं रोम–रोम में रमे राम।
रग–रग में समाहित हैं सीता,
पर कहते हैं सब राम–राम।।

(१२८)

घटनायें बासी हो जातीं,
पर कथा नहीं होती बासी।
इस दुविधा से कब उबरेंगे,
कर्त्तव्यनिष्ठ भारतवासी।।

१. अयोध्या

(१२९)

भारतवासी गुणग्राही हैं,
वे अवगुण अनदेखी करते।
है यही वजह कि वे हरदम,
सबके सद्गुण ही अपनाते।।

(१३०)

अरिहंत राम के परमभक्त,
हम आत्मराम के आराधक।
जिनवाणी सीता के सपूत,
भगवान आतमा के साधक।।

(१३१)

भगवान आतमा के साधक,
ध्रुवधाम आतमा के साधक।
निज आतम में ही रहें लीन,
है यही भावना भवनाशक।।

– ●–

मनीषियों की दृष्टि में –

मार्मिक चित्रण

पौराणिक कथानक के आधार पर लिखा गया **पश्चात्ताप** नामक काव्य डॉ. भारिल्ल की एक ऐसी अनुपम कृति है कि जिसमें सबल युक्तियों के साथ-साथ सरल सुबोध भाषा-शैली में श्रीराम के संवेदनशील हृदय का प्रस्फुटन हुआ है।

अपने परिवार की कीमत पर देश और समाज के लिए अपने जीवन को समर्पित कर देने वाले श्रीराम इस कृति में संवेदनशील पति के रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से कृति सशक्त बन पड़ी है। इसमें व्यक्त विचार मानवीय पक्ष को उजागर करते हैं। पौराणिक युग की नारी की स्थिति का मार्मिक चित्रण और नारी की महानता पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

सहृदय हृदय को आन्दोलित कर देने वाली यह कृति साहित्य जगत में निश्चित ही अपना स्थान बनाएगी।

– पद्मश्री महामहोपाध्याय डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, दिल्ली
पूर्व कुलपति, श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी (उड़ीसा)

अत्यन्त सराहनीय

डॉ. भारिल्ल द्वारा रचित **पश्चात्ताप** काव्य एक ऐसी कृति है, जो श्रीराम के संवेदनशील हृदय को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ है। इस कृति के माध्यम से लेखक ने राम को एक नये रूप में प्रस्तुत कर दिया है; जिससे राम का व्यक्तित्व कठोरता के आरोप से मुक्त हो गया है।

सशक्त भावपक्ष के साथ-साथ कलापक्ष की दृष्टि से भी यह कृति एक समर्थ रचना है; जो अपना सन्देश देने में पूर्णतः सफल है।

'स्वजन को दे देने से दण्ड, नहीं हो जाता कोई महान' और **'अन्याय प्रमाणित हो जिसका, कैसी पवित्रता उस जन में'** – श्रीराम के चिन्तन की उक्त परिणति ने वह सबकुछ कह दिया है, जो कवि कहना चाहता है। सबकुछ मिलाकर यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय है।

– डॉ. एन.के. जैन
कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर – ३०२०१५

उत्तम काव्य

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा रचित **'पश्चात्ताप'** एक काव्य है। इसके कथ्य और कथानक का उत्स जैनपुराण हैं; तथापि यह संदर्भ लोक प्रसिद्धि प्राप्त है।

विवेच्य काव्य में काव्यशास्त्रीय अनेक अंगों का प्रयोग और उपयोग हुआ है। छन्द और अलंकार विधान तथा रस योजना सहज और स्वाभाविक रूप से व्यवहृत है। काव्य की भाषिक तत्समता और प्राञ्जलता उल्लेखनीय है। सुबोध शैली पटुता से काव्य-कलेवर में कहीं काठिन्य प्रतीत नहीं होता।

विचार और व्यवहार में पवित्रता और सद्भावना का संचरण करने वाला तथा श्रोता और पाठक के अन्तर को छूने वाला काव्य मेरे विचार से उत्तम काव्य कहलाता है। विवेच्य काव्य में उपर्यंकित सभी गुणों का यथायोग्य उपयोग हुआ है। कवि के अनुसार उनकी यह काव्यकृति किशोर काल में रची गयी है; तथापि पिंगल और भाषिक पटुता की दृष्टि से इसमें प्रौढ़ता की गरिमा मुखर हो उठी है।

इतना सुन्दर और शुद्ध काव्य प्रणयन के लिये कृपया मेरी बहुतशः बधाइयाँ स्वीकार कीजिये। इत्यलम्।

– विधावारिधि डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया
अलीगढ़ (उ.प्र.) एम.ए., पी.एच.डी., डी.लिट्.

जिज्ञासोत्पादक एवं आकर्षक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का काव्य **'पश्चात्ताप'** उनकी किशोरावस्था की विलक्षण प्रतिभा का परिणाम है।

इसका कथानक जिज्ञासोत्पादक एवं आकर्षक है। भाव पक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से भी यह उच्चकोटि का काव्य है। सीताजी का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी प्रशंसनीय है। **– डॉ. लालचन्द जैन**

अध्यक्ष : जैन चैयर, उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर – ७५१००९

यह कलम कभी रुके नहीं

आप द्वारा सृजित पश्चात्ताप काव्य पढ़ने पर अनुभूतियों के आनन्द से सराबोर हो गया। काव्य में आपके विचारों की ऊँचाइयाँ, चिन्तन की गहराइयाँ और लेखन क्षमता का विस्तार आकाश के समान है। विषयों का चयन बड़ा ही सुन्दर है। काव्य में कल्पना सजीव है, शब्दों का चयन सहज ही अर्थ की अभिव्यक्ति करने वाला है। कई पंक्तियाँ तो सीधे-सीधे मर्म को भेदती हैं।

आपकी लेखन शैली उत्कृष्ट है। आपने काव्य में देशज, विदेशज एवं लौकिक शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है, जो हर किसी कलमकार की परिमार्जितता का सूचक है।

यह काव्य जनसामान्य के लिए भी रुचिकारक, सारगर्भित, बोधगम्य और सहज अर्थ प्रकट करने वाला है, सरल भाषा में है। काव्य में भावनायें कोमल, सूक्ष्म, सौन्दर्य वर्णन के साथ प्रकृति चित्रण में नये-नये सार्थक शब्दों के प्रयोग में आप सिद्ध हस्त हैं।

मेरी भावना है कि –

यह कलम कभी भी रुके नहीं। यह कलम कहीं भी झुके नहीं।।
यह कलम साधना के साधन। अनवरत चले, यह थके नहीं।।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

– डॉ. पी.सी. जैन

निदेशक : जैन अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

एक सन्मार्गदर्शक कृति

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की नई काव्यकृति **'पश्चात्ताप'** का मनोयोगपूर्वक दो बार आद्योपान्त अध्ययन किया। निश्चय ही कवि ने इसमें अत्यन्त कुशलता के साथ अपनी नीर-क्षीर-विवेक दृष्टि का परिचय देते हुए अपने सहृदय पाठकों को भी न्यायोचित ढंग से गुण को गुण और दोष को दोष समझने की मंगल प्रेरणा दी है।

संस्कृत में सूक्ति है कि 'शत्रोरपि गुणाः वाच्याः दोषाः वाच्याः गुरोरपि' जो एक अपेक्षा से बिल्कुल ठीक भी है। पूर्ण वीतरागता से पहले सभी जीवों में गुण और दोष दोनों पाये जाते हैं। हमें उनको भलीभाँति पहिचान कर गुणों का ही अनुकरण करना चाहिए, दोषों का नहीं।

जिसप्रकार गुण; गुण ही होते हैं, उपादेय ही होते हैं, चाहे वह छोटे आदमी में ही क्यों न हों; उसीप्रकार दोष दोष ही होते हैं, चाहे वह किसी महापुरुष में ही क्यों न पाये गये हों और दोष सर्वथा त्याज्य ही होते हैं, प्रशंसनीय नहीं, अनुकरणीय भी नहीं – यह हमें अत्यन्त स्पष्टता से समझ लेना चाहिए।

डॉ. भारिल्ल की 'पश्चात्ताप' नामक यह कृति जीवन के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष को बड़ी ही सुन्दर शैली में, स्वयं राम के मुख से ही अपनी गलती कहलाकर, प्रस्तुत करती है। मुझे विश्वास है कि इससे बहुत लोगों का सन्मार्गदर्शन होगा।

किशोरावस्था में लिखी गई इतनी सुन्दर काव्यकृति कविवर डॉ. भारिल्ल के जन्मजात महनीय व्यक्तित्व को भी उजागर करती है।

– डॉ. वीरसागर जैन

अध्यक्ष : जैनदर्शन विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री
राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

'पश्चात्ताप' साहित्य जगत में नयी दृष्टि

भारतवर्ष की जनता में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र जितनी गहरी पैठ बना पाया; उतना अन्य किसी महापुरुष का नहीं। यही कारण है कि हर काल में राम विषयक साहित्य सृजन हर भाषा में किया गया। राम सभी के हैं; इसलिए सभी ने राम को अपने-अपने आइने से देखा और निरूपित किया।

साहित्यकारों की इसी शृंखला में हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध कथाकार एवं कवि डॉ. हुकमचन्द भारिल्लजी भी आते हैं। उन्होंने महज सत्रह-अठारह वर्ष की उम्र में तर्क और श्रद्धा के अद्‌भुत समन्वय का कुशल प्रदर्शन अपने काव्य 'पश्चात्ताप' में राम का नया व्यक्तित्व दर्शा कर किया है। जहाँ लेखक एक तरफ राम की वीतरागता के परम उपासक दिखायी पड़ रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ वे राम को जनता की अदालत में भी खड़ा करते हैं।

यह कहना गलत न होगा कि लेखक के काव्य से जो स्वर मुखरित हो रहा है, उसमें सीता का व्यक्तित्व राम की अपेक्षा कहीं अधिक निखर कर सामने आ रहा है।

आधुनिक भारतवर्ष में महिलाओं का जो विकसित स्वरूप सामने आ रहा है, उस परिप्रेक्ष्य में महिला अध्ययन केन्द्रों में यह खण्डकाव्य विमर्श का विषय बनेगा तथा लेखक की इस नयी दृष्टि का साहित्य जगत में जोरदार स्वागत होगा।

– डॉ. अनेकान्त कुमार जैन
अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग,
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत
विश्वविद्यालय, दिल्ली

युगानुरूप

भारतीय साहित्य में रामकथा का स्थान सर्वोपरि है। जैन ग्रन्थकारों ने भी ईसवी सन् के प्रारंभिक काल से ही रामकथा को अपने लेखन का आधार बनाया है। उसी कड़ी में डॉ. भारिल्ल ने युगानुरूप **'पश्चात्ताप'** नामक काव्य की रचना कर जैनसाहित्य को समृद्ध किया है। नाम के अनुरूप कृति में भाव का भी पूरा ध्यान रखा गया है, जिससे विषय-वस्तु जीवन्त हो चली है।

हिन्दी भाषा में लघु काव्य समय की माँग है, जिसे उक्त कृति पूरा करने में समर्थ है। आशा है भारिल्लजी अन्य प्रसंगों को भी अपने लेखन का आधार बनायेंगे।

– डॉ. ऋषभचन्द जैन, *निदेशक*
रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ प्राकृत जैनोलॉजी एण्ड अहिंसा वैशाली (विहार)

एक अनुपम कृति

प्रस्तुत पश्चात्ताप कृति उनकी १७ वर्ष की उम्र में लिखी गई थी। इसका मैं प्रत्यक्ष साक्षी हूँ; क्योंकि यह रचना मैंने १९५३ में ही पढ़ ली थी। इसके पहले भी छुटपुट रचनायें और कहानियाँ लिखी गई थीं।

आश्चर्यजनक बात यह है कि उस छोटी सी उम्र में इस कृति में ऐसी सोच, ऐसा चिन्तन और ऐसे तर्क आये हैं; जो आम आदमी के सोच से परे हैं। इन सबसे प्रस्तुत कृति ऐसी अनुपम बन पड़ी है कि जो आज के संदर्भ में भी सार्थक साबित हो रही है।

१३१ छन्दों में रचित पश्चात्ताप काव्य काव्यकला की दृष्टि से तो श्रेष्ठ है ही, भावाभिव्यक्ति भी हृदय को छू जाने वाली है। पढ़ते-पढ़ते पाठक भावविभोर हुए बिना नहीं रहता। कृति में पाठकों का

साधारणीकरण करने की अद्‌भुत क्षमता है।

प्रस्तुत कृति में राम के द्वारा सीता के प्रति हुए अन्याय के अहसास का सजीव चित्रण हुआ है, पश्चात्ताप के द्वारा उस अपराध के प्रायश्चित करने की अभिव्यक्ति भी चरम सीमा पर है।

इससे पता चलता है कि भाई हुकमचन्द में जन्मजात सर्वतोमुखी साहित्यिक प्रतिभा है। कहानी, उपन्यास, निबन्ध के साथ आध्यात्मिक पद्य रचना तथा भाषण कला में वे बेजोड़ हैं।

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

संपादक : जैनपथप्रदर्शक, बापूनगर, जयपुर-१५

सरल, सुबोध और प्रभावी

जैनपरम्परा के कथानकों के आधार पर डॉ. भारिल्ल ने अपनी अनूठी शैली तार्किकता-दार्शनिकता युक्त यथार्थ चित्रण में सीता की अग्नि परीक्षा से सम्बद्ध राम के मनोविचार, लोकनीति, न्यायसिद्धान्त, धर्मनीति और कर्मसिद्धान्त के गूढ़ रहस्यों को काव्यरूप में चित्रित किया है। उनकी भाषा विचार और तर्क का अनुसरण करती हुई सरल-सुबोध और प्रभावी है। यथास्थान सशक्त सूक्तियों और लोकनीति के मुहावरों के प्रयोग से घटनाओं के अंतर रहस्य सहजता से उद्‌घाटित हुए हैं।

डॉ. भारिल्ल बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। उनका व्यक्तित्व अद्‌भुत है। वे ख्याति प्राप्त लेखक, विचारक और प्रवचनकार तो हैं ही, आचार्य अमृतचन्द्रसूरि जैसे सहृदय कवि भी हैं। चिंतन की गहराईयों के साथ हृदय की गहराईयों में उतरकर मानव के चिरंतन मूल्यों को अनुभूत कर उनकी प्रभावी स्थापना करना दुखद कार्य है। डॉ. भारिल्ल इस कार्य को सहजता में सम्पन्न कर लेते हैं, यह उनके

व्यक्तित्व की निराली विशेषता है।

लोकापवाद से बचने हेतु राम द्वारा सीता का परित्याग एक ऐसी निर्मम घटना है, जो पुनः चिंतन के लिए प्रेरित करतीं हैं। अग्निपरीक्षा लोकापवाद के समय भी ली जा सकती थी, इससे निर्जन-वन गमन रुक सकता था।

– डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल

अमलाई, जिला – शहडोल (म.प्र.) – ४८४११७

लीक से हटकर

लीक से हटकर मौलिक चिन्तन पर आधारित इस कृति में सूक्तियों के सहज प्रयोग ने चार चाँद लगा दिये हैं।

काव्य की भाषा सरल, सहज एवं बोधगम्य है, जिसे हर स्तर के सहृदय व्यक्ति सहजता से समझ सकते हैं। छंदों की चरण-रचना को देखते एवं पढ़ते ही राष्ट्रकवि स्वर्गीय श्री मैथलीशरण गुप्त की काव्यशैली के साथ साहचर्य स्थापित हो जाता है। उनके खण्डकाव्य 'यशोधरा' एवं महाकाव्य 'साकेत' में 'कैकयी के अनुताप' की झलक मुझे राम के पश्चात्ताप में दिखाई देती है।

– प्रेमचन्द सिंह (व्याख्याता)

एम.ए. (हिन्दी, इतिहास) बी.एड., एल.एल.बी., आयुर्वेदरत्न
ओ.टी.एस. शिक्षण केन्द्र हा.सै. विद्यालय, अमलाई, शहडोल (म.प्र.)

सहज भावाभिव्यक्ति

'पश्चाताप' १३१ छन्दों में निबद्ध डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की १७ वर्ष की तरुण अवस्था में लिखी गई प्रभावपूर्ण सशक्त रचना है।

विवेच्य काव्य भाषाशैली की दृष्टि से सरल, सहज एवं बोधगम्य है। एक-एक काव्य नेत्रपटल पर चलचित्र की भाँति उभरता और

अपनी अमिट छाप छोड़ता दिखाई देता है। रस, छन्द, अलंकार सभी का सहज संयोग रचना में दृष्टिगोचर हुआ है। राजा रामचन्द्रजी द्वारा सीताजी के परित्याग के उपरान्त जिसप्रकार पश्चात्ताप के भाव उनके मन में आते हैं, वे हृदय को झकझोर देते हैं। सहज भावाभिव्यक्ति लेखनी का कमाल है। रचना यह सिद्ध करने में सफल है कि डॉ. भारिल्ल का गद्य और पद्य दोनों में समान अधिकार है।

– अखिल बंसल
एम.ए., डिप्लोमा–पत्रकारिता, सम्पादक : समन्वयवाणी
स्टेशन रोड़, दुर्गापुरा, जयपुर – ३०२०१८

पावन सन्देश और मार्गदर्शन

आध्यात्मजगत के महान चिन्तक, स्वात्मा के सतत अन्वेषक, दार्शनिक विद्वान डॉ. श्री हुकमचन्दजी भारिल्ल ने प्रस्तुत रचना लिखकर जगत के भोले भव्य प्राणियों को जो पावन सन्देश और मार्गदर्शन दिया है; उसके लिये उनके प्रति मेरी भावना के कुछ प्रसून –

सागर है हर बोल तुम्हारा, रोम रोम बन रहा दिबाकर।
मुट्ठीभर माँटी काया में, लहरा रहा बोध रत्नाकर।।
जगती को सन्देश सुनाते, महावीर का तुम गा–गाकर।
तुम आये शीतल समीर से, जग में इस संतप्त धरा पर।।
जीर्ण शीर्ण कोमल काया में, बैठा शाश्वत रूप तुम्हारा।
क्षण–क्षण मोह तोड़ते जग से, चिन्तन सारे जग से न्यारा।।
शब्द मंत्र से बहा रहे हो, जनकल्याणी अमृतधारा।
खुद तरने का भाव तुम्हारा, तारणहारा लक्ष्य तुम्हारा।।

– गोकुलचन्द सरोज
ललितपुर

पश्चात्ताप : एक समीक्षात्मक अध्ययन

(१)

पश्चात्ताप डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा अल्पायु में विरचित काव्य है। इसमें कथाभाग न के बराबर है। कथानक का आधार जैनाचार्य रविषेण के पद्मपुराण का वह अंश है कि जिसमें रामचन्द्र सीता के द्वितीय वनवास के उपरान्त उसकी अग्निपरीक्षा लेते हैं। अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के पश्चात् से ही बात आरंभ होती है; जिसका संकेत छठवें छन्द की प्रथम पंक्ति **'हो गई अग्निपरीक्षा आज'** से मिल जाता है।

अग्निपरीक्षा के उपरान्त संसारस्वरूप को जानकर सीता का दीक्षा लेना और श्रीराम को अपनी गलती का अहसास होना ही काव्य का मूलाधार है।

सीताजी के दीक्षा के उपरान्त इस काव्य का घटनाक्रम या कथा भाग घंटे–दो–घंटे में ही समाप्त हो जाता है; जिसमें आन्दोलित राम का विलाप कम और पश्चात्ताप अधिक अभिव्यक्त हुआ है। वैसे तो अग्निपरीक्षा के सन्दर्भ में विभिन्न रामकथाओं में विभिन्न मत प्रगट हुये हैं; परन्तु यह काव्य रचना का रविषेणीय पद्मपुराण के आधार पर रची होने से हमें उसी के आलोक में विचार करना चाहिये।

इसमें घटनाएँ हैं भी और नहीं भी। जो दिखाई देती हैं, वह साक्षात् नहीं, वरन पूर्वदीप्ति या प्रतीकात्मक या विचारात्मक शैली में दिखाई देती हैं। कवि के मन पर सीता के द्वितीय वनवासोपरान्त अग्निपरीक्षा लेने का अमिट प्रभाव पड़ा है।

'पश्चात्ताप' के कवि के चित्त में अनेक प्रश्न हैं, जैसे – क्या सीता की अग्निपरीक्षा उचित थी? क्या किसी गर्भवती स्त्री को अपराधी सिद्ध हुये बिना ही निर्वासित किया जा सकता है? क्या नारी का अपना आत्मसम्मान नहीं है या वह केवल पति की अनुचर मात्र है अर्थात् जैसी पति परमेश्वर आज्ञा दें, उसे ज्यों की त्यों शिरोधार्य कर लिया जाए। यदि सीताजी के साथ अन्याय हुआ है तो क्या न्यायाधीश को अपने पद पर बने रहने का अधिकार है?

वह जनता भी कैसी है, जिसने अन्यायी को चुना और अन्याय प्रमाणित हो जाने के बाद भी पद पर बने रहने दिया? क्या राम आदर्श पति या पिता कहलाए जाएँगे? जो व्यक्ति अपनी पत्नी के मन को संवेदनशील होकर नहीं समझ सका, क्या वह प्रजा को बेहतर समझ सकेगा?

ऐसे ही अनेक प्रश्न लेखक के मन को बार-बार उद्वेलित करते हैं, फलतः 'पश्चात्ताप' जैसे काव्य की रचना हो जाती है। यही सवाल रचना को ५३ वर्ष पूर्व रचित होने पर भी आधुनिक संदर्भों में भी प्रासांगिक बना देते हैं।

(२)

कल्पना में पुराणों का समाहार –

पुराण सीमित है; कल्पना असीम है, भावोच्छवास है। इच्छा या कामना में गति है, वह आकाश में दौड़ती है गंतव्य के छोर तक। विराट चित्त सर्वश्रेष्ठ वस्तुओं की रचना कर देता है। कभी लगता है कि – पुराणों में घटनाएँ ठीक-ठीक नहीं आ पाई हैं, कुछ बाकी रह गया है, पुनर्व्याख्येय है – यही व्याकुलता कवि को मुखर बनाती है। विक्षुब्ध हृदयमहोदधि में हजारों प्रश्न उठते हैं। हर उत्तर नए प्रश्न को जन्म दे जाता है। आखिर खोज सुकुमार मन की सुकुमार कल्पना का आश्रय लेती है और कृति का सृजन हो जाता है।

सीता की अग्निपरीक्षा एवं निर्वासन की कहानी बहुत पुरानी है। बाल्मीकि रामायण से लेकर आधुनिक कवियों तक सभी ने उसे अपने-अपने ढंग से कहा; पर डॉ. भारिल्ल की इस रचना का स्वर पूर्व रचनाओं से पूर्णतः भिन्न और नया है।

सामान्यतः राम से जुड़े अनेक ग्रन्थों में सीता की अग्निपरीक्षा का वर्णन विविधता से भरा मिलता है। अधिकांश विद्वानों ने अग्निपरीक्षा को अप्रामाणिक प्रक्षिप्त माना है। इसके कई कारण हैं –

एक तो राम के द्वारा सीता की अग्निपरीक्षा लेना, राम के स्वाभाविक आदर्श चरित्र को खण्डित करता है; जो राम सीता के विरह में व्याकुल होते हैं, अपहरणकर्त्ता रावण से दिन-रात एक करके युद्ध करते हैं; वही

राम युद्ध के पश्चात् सीता को सहर्ष ग्रहण करने के बाद, अपने पास रखने और उसके गर्भवती हो जाने के बाद लोकापवाद के भय से निर्वासित कर दें – यह स्वाभाविक नहीं लगता।

दूसरे, राम चरित्र की कथा कहने वाले अधिकांश ग्रंथों में उत्तर काण्ड का विवरण नहीं मिलता और जिन कवि-लेखकों ने वर्णन किया भी है तो चलता सा कर दिया है। उदाहरण के लिए – वैष्णव साहित्य में हरिवंश पुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, भागवत पुराण, नृसिंह पुराण; बौद्ध साहित्य में अनामकँ जातक, स्याम का रामजातक, खोतानी और तिब्बती रामायण और जैन साहित्य में आचार्य गुणभद्र कृत उत्तर पुराण में अग्नि परीक्षा का निर्देश नहीं मिलता है।

तीसरे, जो वर्णन मिलता है वह विविधता से भरा है। बाल्मीकि रामायण में रावण वध के पश्चात् राम सीता को अपने पास लाने का आदेश देते हैं। जब सीता सम्पूर्ण शृंगार कर राम के पास आती हैं तो राम कहते हैं कि मैंने तो अपने शत्रु से प्रतिकार के लिए रावण से युद्ध किया। मुझे तुम्हारे चरित्र पर संदेह है; अतः मुझे तुम्हारे प्रति कोई आकर्षण नहीं रहा, तुम जहाँ चाहो चली जाओ।

इसके बाद लक्ष्मण सीता के लिए चिता तैयार करते हैं और सीता उसमें प्रवेश करती है। तत्पश्चात् अग्नि आदि देवता सीता के चरित्र का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। उत्तर में राम ने कहा कि मुझे सीता के चरित्र में संदेह नहीं था; परन्तु एक तो रावण के यहाँ रहने के कारण इस शुद्धि की आवश्यकता थी दूसरे, यदि मैं सीता को ऐसे ही ग्रहण कर लेता तो लोग मुझ पर कामी होने का आरोप लगाते। स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण का यह अंश स्वाभाविक नहीं लगता, अतः प्रक्षिप्त है।

महाभारत के रामोपाख्यान में राम केवल देवताओं के साक्ष्य से ही संतुष्ट हो जाते हैं। इसीप्रकार विमल सूरिकृत पउमचरियं का संस्कृत रूपान्तरण आचार्य रविषेण कृत पद्मचरित या पद्मपुराण है, जिसमें राम और सीता के पुनर्मिलन के समय देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि तथा सीता की

निर्मलता के पक्ष में उनके साक्ष्य के अतिरिक्त किसी भी परीक्षा का उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु एक दूसरे अवसर पर सीता-पुत्रों के राम सेना से युद्ध के पश्चात् राम उन पुत्रों के साथ अयोध्या लौटते हैं। अयोध्या पहुँचकर सुग्रीव-हनुमान आदि राम से सीता को स्वीकार करने की प्रार्थना करते हैं। तब राम इस शर्त पर कि - 'सीता स्वयं के सतीत्व का साक्ष्य दें तो स्वीकार कर सकते हैं' - यह कहते हैं।

उत्तर में सीता कहती हैं 'मैं शूली पर चढ़ सकती हूँ, आग में प्रवेश कर सकती हूँ, लोहे की तपी हुई छड़ धारण कर सकती हूँ अथवा उग्र विष भी पी सकती हूँ।'

राम ने अग्निपरीक्षा को ही उचित समझा और तीन सौ हाथ गहरा कुण्ड बनवाकर आग प्रज्ज्वलित कराकर, सीता से सतीत्व की शपथ खाकर प्रवेश करने को कहा।

सीता ने जैसे ही प्रवेश किया अग्निकुण्ड स्वच्छ जल से भर गया और लोगों ने देखा सीता सहस्र दल कमल पर विराजमान हैं। राम ने सीता से क्षमा याचना की और साथ चलने को कहा। इस प्रस्ताव को सीता ठुकराकर जैनेश्वरी दीक्षा लेने के लिए चल पड़ीं।

इसीप्रकार 'कथा सरित सागर' में सीता की परीक्षा राम द्वारा न होकर बाल्मीकि ऋषि के आश्रम के अन्य ऋषियों द्वारा ली जाती है। वह भी अग्नि के द्वारा नहीं बल्कि जल से भरे टीटिभ सरोवर में प्रवेश कराकर। इसप्रकार अधिकांश मध्यकालीन रामायणों में बाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्त अंश को आधार बनाकर कमोवेश अलग-अलग ढंग से इस घटना का उल्लेख किया है और घटना के कारणों में किसी ने भृगु ऋषि (अहिल्या के पति) के और किसी ने मन्दोदरी के शाप का उल्लेख किया है।

अन्य वृत्तान्तों में सीता की अग्निपरीक्षा के अतिरिक्त निम्न परीक्षाओं का भी उल्लेख मिलता हैं जैसे - विषैले सर्पों से भरे घड़े में हाथ डालना, मस्त हाथियों के सामने फेंका जाना, सिंह और व्याघ्र के वन में छोड़ देना, अत्यन्त तप्त लोहे पर चलना आदि।

इसीप्रकार सीता का निर्वासन या त्याग की घटना का कुछ ग्रन्थों में जिक्र ही नहीं किया है और कुछ ग्रन्थों ने सीता-निर्वासन का वर्णन तो किया है; किन्तु कारण भिन्न-भिन्न माने हैं।

उदाहरण के लिए - आदि रामायण, महाभारत, हरिवंश पुराण, वायुपुराण, विष्णुपुराण, नृसिंहपुराण, अनामकं जातक, गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण में इस घटना का उल्लेख ही नहीं है।

इसके विपरीत, जिन्होंने उल्लेख किया है उनके कारण भिन्न-भिन्न हैं, जैसे - बाल्मीकि रामायण का उत्तर काण्ड, रघुवंश, उत्तर रामचरित, कुन्दमाला, पउमचरियं, पद्मचरित ने लोकापवाद को; तो कथासरित्सागर, भागवत पुराण, जैमिनीय अश्वमेघ, पद्मपुराण, तिब्बती रामायण ने धोबी की कथा को; उपदेशप्रद कहावली, हेमचन्द कृत जैन रामायण, आनंद रामायण आदि ने रावण के चित्र को कारण माना है।

सीता के निर्वासन के परोक्ष कारणों में भृगु ऋषि का शाप, तारा का शाप, शुक्र का शाप, लक्ष्मण का अपमान, लोमश ऋषि का शाप, सुदर्शन मुनि की निन्दा, बाल्मीकि को प्रदत्त वरदान आदि को कारण माना गया है।

कुछ ग्रन्थों ने सीता के निर्वासन को अवास्तविक करार देते हुए नाटकीय घटनाक्रम की तरह केवल प्रतीकात्मक त्याग की युक्ति का सहारा लिया है। उदाहरण के लिए - तुलसीकृत गीतावली में राम की आज्ञा से लक्ष्मण सीता को वन में न छोड़कर बाल्मीकि के हाथों सौंप देते हैं; क्योंकि दशरथ की अकाल मृत्यु के कारण, उनकी शेष आयु राम को मिलती है - जिसे वह सीता के साथ भोगना अनुचित समझकर स्वयं ही निर्वासित कर देते हैं।

यह घटना रूप बदलकर कमोवेश अन्य ग्रन्थों, अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण आदि में आती है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि कवि हुकमचन्द भारिल्ल के रचित 'पश्चात्ताप' नामक काव्य में पौराणिक वृत्त के साथ कल्पना का समुचित प्रयोग किया गया है।

यद्यपि प्रस्तुत काव्य के कथांश का मुख्य उपजीव्य जैन पुराण साहित्य (विशेषतः पद्मपुराण) ही रहा है; तथापि अन्य लोक-श्रुत तथ्यों का समावेश करने में भी कवि ने संकोच नहीं किया है।

कल्पना का समाहार –

पौराणिक वृत्त के अनुसार, 'सीता के जैनेश्वरी दीक्षा लेने के संकल्प को सुनते ही राम मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े, मात्र इतना सा वर्णन है। ठीक इसी बिन्दु को आधार बनाकर कवि ने अपने काव्य का महल खड़ा किया है। अग्निपरीक्षा समाप्त होने पर राम को अपने द्वारा किए कृत्य पर पश्चात्ताप होता है और वह विलाप, प्रलाप, आत्मालाप में परिवर्तित हो जाता है।

चूंकि शेष चित्रण कल्पना-प्रसूत है; अतः लेखक को घटनाओं को स्वयं के अनुसार चित्रित करने की स्वतंत्रता मिल जाती है और वह सारी घटना को स्वयं की कल्पनाशक्ति से आधुनिक संदर्भों में ढ़ालता है। रचना के इस दौर में कवि की प्राणधारा अत्यंत प्रबल है। चिन्तन जैसे कगार तोड़ आगे बढ़ जाना चाहता हो और कवि अपने उस वेग को रोक पाने में असमर्थ अनुभव कर रहा हो – ऐसा प्रतीत होता है।

(३)

'पश्चात्ताप' : अंतस्थल का विप्लव प्रक्रिया और पाठ –

'पश्चात्ताप' काव्य का आरंभ नाटकीय शैली में होता है। कवि किसी सूत्रधार की तरह सबसे पहले मंगलाचरण कर काव्य की विषय-वस्तु का परिचय देते हैं। इसी के साथ पूर्व में घटित घटना की सूचना देते हैं कि प्रजा की पुकार सुनकर अवधेश ने संपूर्ण समाज के समक्ष सीता की परीक्षा ले तो ली, लेकिन वह परीक्षा लेना स्वयं को भारी पड़ गया; क्योंकि सीता तो परीक्षा में उत्तीर्ण हो गई, किन्तु प्रेमी हृदय राम अनुत्तीर्ण हो गए। उनका हृदय आन्दोलित हो गया। लगा जैसे कि मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया है, अन्याय हो गया है।

क्या इसका प्रतिकार संभव है? नहीं! कतई नहीं!! तीर कमान से निकल गया है।

अपराधी हृदय सहज ही अपने अपराध को स्वीकार नहीं करता है, वह भी यदि वह अपराधी आदर्श हो तब तो और कठिन हो जाता है। पहले राम भी अपने अपराध के कारण दूसरों में खोजने का प्रयास करते हैं और वह सारा दोष जनता (प्रजा) के माथे मढ़ते हैं कि प्रजा ने ही उन्हें इस बात के लिए बाध्य किया कि वह सीता के साथ अन्याय करें, दूसरा दोष प्रजा का यह कि उसने मेरे जैसे व्यक्ति को जिसे न्याय करना नहीं आता हो, सत्य की समझ न हो, न्यायाधीश पद पर प्रतिष्ठित ही क्यों किया? प्रजा ही अविवेकी है, जिसने मुझ जैसे अन्यायी को चुना।

किन्तु यह है कसूर किसका,
हमारा अथवा जनगण का।
उन्होंने अन्यायी को चुना,
किन्तु मैं क्यों कहने से बना।।१३।।

फिर राम को लगता है कि भले ही प्रजा ने मेरा चयन किया; किन्तु मैं नकार भी सकता था; मैंने नकारा नहीं अर्थात् मेरे मन में लालसा विद्यमान थी। हो सकता है मेरा ही दोष हो। 'जाने-अनजाने' कहकर राम इस अपराध को हल्का कर रहे हैं। जैसे कि 'भूलवश' गलती हो गई, चलो माफ कर दो।

सामान्यतः वस्तु की कीमत वस्तु के खोने की आशंका मात्र में ही पता चल जाती है, किन्तु यहाँ तो सीता छूटी ही जा रही हैं। राम को अपने अपराध का बोध गहराया –

उदर में था लवकुश जोड़ा,
तभी निर्जन वन में छोड़ा।
प्रथम मैंने नाता तोड़ा,
आज उसने मुखड़ा मोड़ा।।१६।।

मैंने सीता को तब छोड़ा, जब कोई भी नारी अपना सबसे बड़ा सुख प्राप्त करने जा रही थी 'मातृत्व का सुख'। उसे उस समय सहारे की अधिक जरूरत थी। यहीं पाठक को पहली बार पता लगता है कि सीता

कहीं जा रही हैं, जब राम कहते हैं 'नहीं मैं जाने ना दूँगा'। कहाँ? किसको? क्यों? जवाब अगले छन्दों में मिलता है।

यहाँ आकर लगता है कि कवि स्वप्न शैली का प्रयोग कर रहा है। सीता के दीक्षा के लिए जाते ही राम मूर्च्छित हो गए और उस मूर्च्छा की अवस्था में ही जैसे आत्मालाप किये जा रहे हैं। राम मूर्च्छित हैं, स्वप्न में सीता से संवाद कर रहे हैं, स्वयं को अपराधी मान रहे हैं, क्षमा मांग रहे हैं।

सुनो अपराधी हूँ सीते!,
करो अपराध क्षमा मेरा।।१८।।

परन्तु आश्चर्य ! महा आश्चर्य ! सीता क्षमा और क्रोध दोनों ही स्थितियों से ऊपर उठ गई हैं। यद्यपि ऐसा होना तो तद्भव मोक्षगामी राम को चाहिए था, किन्तु हो गई सीता। उत्तर में सीता वही कहती हैं, जो किसी भी भारतीय नारी को क्षमा माँगते अपराधी प्रेमपात्र से कहना चाहिए था।

कहा इतना ही सीता ने,
नहीं अपराध तुम्हारा है।
करमफल पूरब का जानो,
करमबल सबसे न्यारा है।।१९।।

पूर्वोपार्जित कर्मफल के कारण यह सब घटित हुआ अर्थात् पूर्वभव में मैंने कोई भूलें की होगीं, जिनके कारण इस भव में ऐसे संयोग मिले, इसलिए तुम्हारा दोष नहीं है।

कहने को कह तो दिया सीता ने कि 'नहीं अपराध तुम्हारा है' पर कसक अभी बाकी थी। राम ने सीता को जब दण्ड दिया, तब सीता को सफाई देने का अवसर ही नहीं दिया। आज सीता के पास अवसर था –

बात बस इतनी है हे नाथ !,
मिला देते सत् का संयोग।।२३।।

पर सीता इतनी सी ही बात कहकर जो बात को छोटा कर रही है, वह बात उतनी छोटी नहीं है, बल्कि आदर्श राम के धीर गम्भीर व्यक्तित्व

पर गम्भीर आरोप है कि उनके निर्णयों में 'सत् का संयोग' नहीं है। उन्हें कृत्य-अकृत्य का काल-विवेक नहीं है। यदि मन में चरित्र के विषय में कोई संदेह था तो परीक्षा निर्वासन के समय ही ले लेते, किन्तु राम तो पुरुष ही नहीं महापुरुष थे, वे नारी के हृदय की पीड़ा को कैसे समझ पाते? न तब समझ पाए, न अब समझ पाए। आखिर में सीता राम को समझाती है –

अरे निन्दा सुनकर मेरी,
नाथ ! त्यागा तुमने मुझको।
धर्म की सुनकर निन्दा कभी,
त्याग मत देना तुम उसको।।२८।।

इस अंतिम उपदेश के बाद सीता दीक्षा हेतु चल देती हैं। राम उन्हें जाते देख रहे हैं। लव-कुश, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न ने अपने प्रेम का वास्ता देकर रोकने की कोशिश की, पर सीता नहीं रुकी।

यहीं पर कवि एक मार्मिक बिम्ब की सृष्टि करता है – राम प्रेम में विह्वल हैं, आँखों से अश्रु की धारा बह रही है। कवि इन आँसुओं को विह्वलता का लक्षण चित्रित करते हैं, और मुझे राम की असमर्थता का बोध कराते लगते हैं। राम सारी कोशिशों के बावजूद चाहकर भी नहीं रोक पा रहे हैं।

सीता चली जाती है। राम का पश्चात्ताप जारी है। इस क्षण राम के पास समय है कि वे अपनी भूलों का पुनरावलोकन कर सकें।

राम पुनरावलोकन करते हैं और इसी दौरान राम कई अबूझ प्रश्नों से दो-चार होते हैं।

आखिर न्याय है क्या – जन-मन की प्रसन्नता, बहुमत का निर्णय या सत्य का साथ? नारी की पवित्रता के निर्णय का अधिकार किसे है – राजा को, पति को या जनता को? यदि सीता की पवित्रता में शंका करता तो मैं करता, जनता को अधिकार कैसे मिला?

यहाँ राम अपने चरित्र की कमजोरी को स्वीकार रहे हैं –

सीता सतीत्व में शंका थी,
तो क्यों उसको मैं घर लाया।
सीता यदि परम पुनीता थी,
तो क्यों जनमत से घबराया।।५४।।

दूसरी बात यह भी है कि यदि धोबिन ने सीता को अपने बचाव के लिए प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया तो क्या गलत किया? ऐसा तो सभी करते हैं। सच तो यही है कि शंका तो राम के मन में थी, धोबिन तो बहाना थी, अन्यथा एक धोबिन अयोध्या की सम्पूर्ण प्रजा का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकती है? धोबिन एक व्यक्ति या एक परिवार है, सम्पूर्ण प्रजा नहीं।

राम के 'पश्चात्ताप' के इस अवसर को कवि ने अपनी नारी भावना के रूप में प्रस्तुत किया है। सीता को खोकर राम सम्पूर्ण नारी जाति के प्रति संवेदनशील हो उठते हैं।

कविता पौराणिक युग से बाहर आ जाती है –

अब तक तो समझा था मैंने,
नारी ही होती परित्यक्त।
अन्याय देख कर पतिवर का,
हो जाती वह नर से विरक्त।।७४।।
नर नारी से पैदा होता,
उससे पाता है नेह मान।
पर अहंकार से भरा स्वयं,
जगजननी का करतापमान।।७८।।

राम के मन में नारी की महिमा का बोध इतना अधिक होता है कि वह प्रेम, धैर्य, त्याग, मातृत्व, कोमलता आदि की मूर्ति दिखाई देती है। जैसे निराला के तुलसीदास को रत्नावलि के द्वारा प्रतिबोधित करने पर वह साक्षात् दुर्गा, अम्बा, सरस्वती दिखाई देने लगी थी। राम के मन में भी नारी के प्रति महिमा सही मायने में सीता के प्रति महिमा है।

उनके हृदय का प्रत्येक अंश सीता के प्रति प्रेम से आप्लावित है। शायद इसीलिए वह स्वयं को सीता के स्थान पर रखकर सोचते हैं कि –

मेरा अपवाद जगत करता,
क्या छोड़ जानकी देती चल।।९०।।

निश्चित रूप से नहीं, तो फिर मैंने कैसे छोड़ दिया? यह भी एक गहरा दंश है। राम अर्द्धविक्षिप्त की भाँति प्रलाप करने लगते हैं 'हे लक्ष्मण ! मुझे धिक्कारो, मारो, भाई मत कहना। हे लवकुश! तुम मुझे पिता मत कहना। हे सीते! तुम निर्दयी हो, क्या मेरा अपराध क्षम्य नहीं था।'

सीते! तुमसे ही पूछ रहा,
निरदये कहूँ अथवा सदये?।
माना मेरा ही है कसूर,
पर क्षम्य नहीं अपराध प्रिये?।।१०२।।

राम को पुनः बोध जागता है। राम विचारते हैं कि अपराध मेरा ही है और इसका दण्ड भी यही है कि जिसप्रकार मैंने सीता की अग्निपरीक्षा लेकर उसे अग्नि में जलाया; उसीप्रकार मैं भी स्वयं को शोक की अग्नि में जलाऊँगा। फिर भी एक अन्तर अवश्य रहेगा कि सीता तो अग्नि परीक्षा देकर पवित्र प्रमाणित हो गई; लेकिन मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि में पवित्र प्रमाणित नहीं कर पाऊँगा। अतः मैं सीता का अनुगामी हुआ। जगत्जन जब आपस में अभिवादन करेंगे तो पहले सीता का नाम उच्चारित करते हुए सीताराम कहेंगे।

अंत में कवि इस सम्पूर्ण काव्य की प्रतीक योजना को स्पष्ट करता है कि इस काव्य में जो राम है, वह आतमराम है और जो सीता है, वह जिनवाणी है। यह जिनवाणी रूपी सीता तो भगवान के ज्ञान रूपी कुण्ड में स्नान कर पावन हो गई और यह प्रमाणित कर गई कि उसका होना तो आतमराम को पावन बनाए रखने के लिए है। यदि आतमराम स्वयं को प्रायश्चित की अग्नि में तपाकर शुद्ध करे तो वह भी पावन हो सकता है।

कवि द्वारा उपर्युक्त रूपक का आद्यन्त निर्वाह किया गया है।

(४)

'पश्चात्ताप' : दर्शन और अध्यात्म –

पश्चात्ताप काव्य का अध्यात्म ही प्रस्थान बिन्दु है और अध्यात्म ही परिणति। चूँकि कवि के पूरे जीवन का निचोड़ अध्यात्म के इर्द-गिर्द ही बहा है; अतः रचना का अध्यात्ममय होना आश्चर्य पैदा नहीं करता; बल्कि रचना के गाम्भीर्य को आद्यन्त बनाए रखता है। मानवीय जन्म-मृत्यु चक्र उसके हाथ में नहीं है; किन्तु प्रत्येक जन्म को, उसके प्रत्येक क्षण को अध्यात्म के आलोक में अमर बनाया जा सकता है।

काव्य का मंगलाचरण ही अध्यात्म भावना से परिपूर्ण है –

समाई सीता रग-रग में,
बस रहे रग-रग में श्री राम।
करूँ मैं वंदन अभिनन्दन,
रमूँ नित अपने आतम राम।।४।।

कवि ने यहाँ जो अपने आत्मा में रमण करने की भावना व्यक्त की है; यही भावना आगे चलकर उपदेशमय शब्दों में अभिव्यक्त होती है।

त्यागने से मुझको हे नाथ!,
हुआ होगा थोड़ा आताप।
त्याग देने से आत्म धर्म,
मिलेगा भव-भव में संताप।।२९।।

अपनी आत्मा के आश्रय से अनेकों जन्मों के संताप नष्ट हो जाते हैं और आत्मस्वभाव को छोड़ देने से अनेकों जन्मों तक संताप को सहन करना पड़ता है। काव्य के अंत में नान्दी पाठ के रूप में कवि ने जो भावना व्यक्त की, वह आध्यात्मिक भावना ही है।

अरिहंत राम के परम भक्त,
हम आत्मराम के आराधक।
जिनवाणी सीता के सपूत,
भगवान आत्मा के साधक।।१३०।।

भगवान आत्मा के साधक,
ध्रुवधाम आतमा के साधक।
निज आतम में ही रहें लीन,
है यही भावना भवनाशक।।१३१।।

चूँकि कृतिकार अध्यात्मवादी कवि है – अध्यात्म कवि के रग-रग में समाया हुआ है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है –

''प्रत्येक महाकवि द्रष्टा तो अनिवार्यतः होता है और दार्शनिक भी प्रायः होता है; किन्तु शास्त्रकार नहीं हो सकता; क्योंकि शास्त्र और काव्य की प्रकृति मूलतः भिन्न है। इसीकारण जहाँ कहीं भी कवि ने शास्त्र-निरूपण का प्रयत्न किया; उसका कवित्व बाधित हो गया।''

डॉ. नगेन्द्र के उपर्युक्त कथन से अंशतः सहमत हुआ जा सकता है; क्योंकि यदि कवि के वर्तमान पर दृष्टि डालें तो वह शास्त्रकार, चिन्तक, प्रवचनकार आदि अनेक भूमिकाओं को लिए है; फिर भी काव्य-रचना निर्बाध है, किन्तु 'पश्चात्ताप' के रचनाकाल को ध्यान में रखकर देखा जाए तो ऐसी रचना पुनः कवि की लेखनी नहीं उगल सकी, जिसमें कि सही अर्थों में काव्यत्व है।

प्रस्तुत कृति में यद्यपि कवि का उद्देश्य दर्शन या अध्यात्म को काव्य के सांचे में उड़ेलकर प्रस्तुत करना नहीं रहा; ऐसा प्रतीत होता है, फिर भी दर्शन काव्य में स्थान-स्थान पर व्यंजित हो ही गया है। राम के द्वारा सीता से स्वयं को अपराधी मानकर क्षमा माँगने के प्रसंग में सीता के मुख से कुछ सिद्धान्त सहज ही निसृत हो जाते हैं, उदाहरण के लिए जैनदर्शन का कर्म सिद्धान्त का सहज वर्णन करती है –

विगत भव में जो बाँधे कर्म,
वही फल देते इस भव में।।२०।।
या
'करे सो भरे' यही है सत्य,
आपका इसमें कोई न दोष।।२१।।

इसीप्रकार 'क्रमबद्धपर्याय' सिद्धान्त की छाया देख सकते हैं –

आप न करें विकल्प विशेष,
सभी कुछ निश्चित हैं संयोग।।२३।।

बारह भावनाओं में अनित्य भावना का चिन्तन भी सीता इसप्रकार करती हैं –

नाते–रिश्ते सब झूठे हैं,
इनमें उलझी दुनिया भोली।।३४।।
अथवा
नातों का ताप न तपना है,
नाते न मुझको अब भायें।
नाते ही जग के बंधन हैं,
ये सभी जगत को भरमायें।।३५।।

उपर्युक्त उद्धरण लेखक की ज्ञाननिधि के अंश मात्र हैं। चूँकि कवि का उद्देश्य अंतस्थल में व्याप्त विप्लव को भावित करना है; अतः काव्य के सहज प्रवाह में ये मोती उतराए हैं।

(५)

'पश्चात्ताप' – आधुनिक संदर्भों का विधान –

'पश्चात्ताप' काव्य के अध्ययन के दौरान यह सवाल बार–बार मन में उठता रहा कि काव्य में व्यक्त भाव एवं विचार कवि के अनुभव हैं या नायक राम के? यदि कवि के अनुभव हैं तो कौन से कवि के युवा कवि के या प्रौढ़ कवि के, और यदि राम के हैं तो कौन से राम के पौराणिक राम के या तुलसी के राम के या आधुनिक राम के ?

इन विकल्पों में से दो विकल्पों को तो सीधे–सीधे नकारा जा सकता है, एक तो प्रौढ़ कवि को; क्योंकि काव्य में जो वैचारिक स्फूर्ति या ताजगी है, वह किसी युवा मन का ही उत्साह हो सकता है। दूसरे, पौराणिक राम को, क्योंकि पौराणिक राम आदर्श नायक हैं, सामन्तवाद या राजतंत्र का हिस्सा हैं। भले ही वह एक पत्नीव्रती हैं, किन्तु कर्तव्य की

वेदी पर उसे बलि देते समय उसके सामने मनु स्मृतिकार ही खड़े होंगे 'सार्त्र या सीमोन द वोडवार' नहीं; अतः अग्निपरीक्षा के दौरान नारी पर अत्याचार हो रहा है, उसके स्त्रीत्व का अपमान हो रहा है, यह विकल्प पौराणिक राम को सपने में भी नहीं आ सकता है।

यदि आधुनिक राम का अनुभव मानें तो यह भी संभव नहीं है; क्योंकि डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ''काव्य में कवि–अनुभूतियों का साधारणीकरण होता है'' और राम कवि नहीं, काव्य के नायक हैं। अतः काव्य में वर्णित सभी विचार कवि की अनुभूतियों से निसृत हैं, वह भी युवा कवि की।

कवि के द्वारा संभवतः १९५२–५३ ई. आसपास इस काव्य की रचना की गई थी, जब कवि स्वयं युवा था और देश की तात्कालिक समाज और राजनीति को गहराई से समझ रहा था, अपने युग के सत्य के प्रति जागरुक था। प्राचीन मूल्यों का नए जीवन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवन्तता प्रदान करना चाहता था तो दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं को महत्व देते हुए प्राचीन किन्तु जीवन्त मूल्यों से जोड़ना चाहता था।

कवि की पीढ़ी ने स्वतंत्रता से पूर्व जिस रामराज्य का सपना देखा था; वह सपना आजादी के पश्चात् भंग होता है। जिन मूल्यों को गाँधी स्थापित कर गए थे, वे पुनर्स्थापन की माँग कर रहे हैं। फलतः स्वप्नभंग और मूल्य–विघटन के इस दौर में युवा मन की रचना राजनीति, लोकतंत्र जैसे विषयों पर सवाल उठाती है। साथ ही सामाजिक सरोकारों को आधी आबादी के साथ जोड़ने का प्रयास करती है।

'पश्चात्ताप' काव्य में कवि ने राम को पौराणिक संदर्भों से निकालकर पूर्णतः आधुनिक मानव बनाया है। यहाँ राम का चरित्र दिव्य नहीं है, वह व्यवहारिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर बुना गया है। नायक की निजी पीड़ा है, फिर भी सामाजिक–राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों को आत्मसात किए हुए है।

वह एक ऐसा मानव है, जो राजत्व के कारण विवश है। अपनी पत्नी से एकनिष्ठ प्रेम करता है; पर खेद है कि वह अपनी प्रजा से भी प्रेम करता है, सामाजिक मूल्यों से भी प्रेम करता है।

राम की विवशता काव्य के आरंभ में ही दिखाई देती है, जब सूत्रधार (काल्पनिक) कहता है – **''शील ने रखी सती की लाज''** अर्थात् राम तो अपनी विवशता के वशीभूत होकर सती की लाज नहीं रख सके; पर सीता के सतीत्व ने सीता की लज्जा की, प्रतिष्ठा की रक्षा की। नायक अवश्य व्याकुल है सीता के प्रेम से। वह सब कुछ हो रहा है, जो वह नहीं चाहता है। राम की यह विवशता काव्य में अंत तक रहती है।

राजा होना एक विवशता थी, कर्तव्यपालन दूसरी विवशता, प्रेम में उद्वेलित होना तीसरी विवशता, पिता होने का सुख न प्राप्त कर पाना चौथी विवशता, अग्निपरीक्षा लेना पाँचवीं विवशता, सीता को दीक्षा लेने से न रोक पाना छठी, सीता के व्यंग्य झेलना सातवीं, स्वयं के लिए पश्चात्ताप का अग्निकुण्ड तैयार कर कूद पड़ना आदि अनेक विवशताएँ हैं, जो राम के चरित्र को विवश मानव घोषित करती हैं।

जाहिर है कि ऐसा विवश मानव जब-जब विवशता के कारणों की खोज करेगा तो वह स्थापित पौराणिक मानदण्डों को शंका की दृष्टि से देखेगा, फलतः एक अलग सा भिन्न आधुनिक मानव निखरकर आएगा। इस आधुनिक मानव का द्वन्द्व अन्तरतल पर हृदय और बुद्धि का द्वन्द्व है। कवि ने लिखा है – **''मनीषा करती तर्क-वितर्क''** राम के द्वन्द्वों में पहले सीता के निर्वासन और अग्निपरीक्षण के क्षण, बुद्धि ने हृदय को पराजित कर दिया; किन्तु पुनः हृदय बुद्धि के साथ द्वन्द्व स्थापित कर रहा है, जो काव्यांत तक जारी रहेगा। इस द्वन्द्व में हृदय बुद्धि को उसके द्वारा किए अनुचित कार्यों की सूची थमा रहा है।

पश्चात्ताप के राम तुलसी और निराला के राम से पूर्णतः भिन्न चरित्र के हैं, यह राम निरीह व कमजोर हैं। तुलसी के राम धीर-गम्भीर हैं, पूरा

का पूरा मानस लिख डाला, पर राम की आँख से एक कतरा भी नहीं बहने दिया; क्योंकि उन्हें रावण से युद्ध लड़ना था, कमजोर चरित्र युद्ध कैसे लड़ता? हार न जाता।

दूसरी बात, तुलसी को मानस में इस राम के चित्रण का अवसर भी नहीं मिला। गीतावली में मिला भी तो काल्पनिक घटना कहकर टरका दिया। निराला ने 'शक्तिपूजा' में राम को दुर्बलता के किसी क्षण में रोने को बाध्य जरूर किया है, जब राम को यह विश्वास होने लगा कि प्रिया प्राप्त करना कठिन है – 'धिक् जीवन जो पाता आया विरोध', 'उद्धार प्रिया का हो न सका' यह विचार आते ही राम की आँखों से दो अश्रु बिन्दु ढुलक पड़े।

''हो गए नयन कुछ बूँद पुनः ढलके दृग जल''

निराला के राम के मन में मात्र संशय था कि वे अपनी प्रिया को अब प्राप्त न कर सकेंगे। पर 'पश्चात्ताप' के राम के मन में संशय नहीं, पूर्ण विश्वास है कि अब प्रिया को प्राप्त करना असंभव है। इसीलिए –

सीतेश प्रभु की आँखों से,
टपटप दो आँसू टपक पड़े ।।४२ ।।

निराश राम ने जो पश्चात्ताप किया, उसने राम को आधुनिक बना दिया। यह राम सुख के क्षणों में हँसता है, पीड़ा में दुःखी होता है, और अपनी प्रिया के प्रति गहरी संवेदनाएँ रखता है।

कवि ने 'अपनी बात' में लिखा है कि **''उक्त मंथन में कुछ प्रकाश आज की समस्याओं पर भी पड़ गया है।''** वे समस्याएँ क्या हैं और कौन सी हैं? इसे राम के मुख से कहलवाया है।

कवि का सबसे पहले ध्यान न्यायपालिका की ओर गया। न्याय क्या है? न्यायाधीश कैसा होना चाहिए? क्या जनता के निर्णय न्यायाधीश को न्याय से विचलित कर सकते हैं? क्या बहुमत के कहने पर अन्याय न्याय हो जाएगा? निश्चित रूप से नहीं !

कवि का विचार है कि किसी निरपराध को दण्ड देना न्याय नहीं, अन्याय है। न्याय तो सत्य का पक्षधर होता है; वह अन्याय, असत्य, जनमत, बहुमत किसी के सामने झुकता नहीं है और न्यायाधीश भी ऐसा होना चाहिए जिसे नीर-क्षीर विवेक हो अर्थात् सत्य की परख हो।

'किसी को कैसे दे वह दण्ड, सत्य की नहीं परख जिसे।'

इसीप्रकार जननायक अर्थात् नेता भी ऐसा चुनना चाहिए जो अन्याय और असत्य को प्रश्रय न दे अर्थात् चुनाव जनता के द्वारा किया जाता है, जनता की अक्षमता या समता का पता इस बात से चल जाता है कि वह कैसे नेता का चुनाव करती है।

प्रजाजन में कैसा अज्ञान,
भरा है हे मेरे भगवान।
चुने चाहे जिसको नेता,
नहीं जो उचित दण्ड देता।।१२।।

लगता है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही भारतीय राजनीति में विकृत चरित्रों का समावेश होना शुरू हो गया था, अन्यथा लेखक ऐसा नहीं लिखता। जो बातें तब के समय में लागू थीं, वह आज की विकृत राजनीति के संदर्भ में तो पूरी तरह लागू हैं ही।

भारतीय राजनीति के बाद लेखक की दृष्टि में दूसरा विषय नारी जाति के प्रति पुरुष जाति की बढ़ती असंवेदनशीलता है।

नारी का व्यक्तित्व आखिर है क्या? क्या वह पुरुष की अनुचर मात्र है? जिसे सौभाग्यवती बनाया जाता है, उसका सौभाग्य पुरुष की दासता में छिपा है? विश्व की आधी आबादी क्या नारी होने के दर्द एवं त्रासदी झेलने के लिए अभिशप्त है? क्या नारी का स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं है? वह आनुषांगिक है? अनिवार्य न होकर नैमित्तिक है? या विषय मात्र है? जबकि पुरुष विषयी है।

इसप्रकार नारी को लेकर हमारे पास स्वीकृत अवधारणाओं की लम्बी फेहरिस्त है, जिनके अनुसार हम अपने नारी विषयक आचरण संबंधी नियमों का निर्धारण करते हैं। चूँकि नारी के व्यक्तित्व और चरित्र का नियामक, निर्णायक पुरुष ही होता है; अतः वही उसके चरित्र के सत् की घोषणा करता है। यहाँ राम सम्पूर्ण भारतीय पुरुष समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं और वही सीता के अस्तित्व को परिभाषित करते हैं।

राम ने सीता को अज्ञातवास (जनशून्य स्थानवास) दे दिया, वह भी धोखे से। यह कहकर कि तीर्थों की वंदना के लिए भेजा जा रहा है। क्यों छोड़ा? लोकापवाद के भय से तथा स्वयं को आदर्श राजा साबित करने के लिए। वह भी ऐसी स्थिति में जब सामान्यतः कोई भी पति अपनी पत्नी के प्रति थोड़ा भी निर्मम नहीं होता है, कोमल होता है अर्थात् सीता को दीर्घकालीन दाम्पत्य जीवन का फल मातृसुख प्राप्त होने जा रहा था। वह होनेवाले शिशुओं के साथ सपनों में खोई हुई थी कि अचानक उसे धोखे से जंगल के लिए रवाना कर दिया जाता है। सीता अवाक् रह जाती है।

कवि ने लिखा है कि सीता को जंगल में भेजकर राम ने सीता को दण्ड दिया था, लेकिन सवाल यह है कि दण्ड दिया किस अपराध के लिए था? उस अपराध के लिए, जिसे सीता ने किया ही नहीं था। वन में सीता का अपहरण हुआ, क्या यह सीता का कसूर था?

सीता यदि रावण के घर छह महीने रही तो क्या अपनी इच्छा से?

वन में उसका अपहरण हुआ,
इसमें उसका अपराध न था।
वह लंका में छह मास रही,
पर मन तो उसका साथ न था।।४६।।

बल्कि अपराधी तो स्वयं राम ही थे कि सीता की रक्षा के दायित्व का निर्वहन नहीं कर सके। सीता को वापस लाने में छह माह का समय लगा दिया।

कवि ने राम के मुख से कहलवाया है कि –

जंगल में उसकी रक्षा का,
उत्तरदायित्व हमारा था।
इसमें उसका था क्या कसूर?
उसने तो हमें पुकारा था।।४७।।

एक क्षण के लिए यह मान भी लिया जाए कि सीता अपराधी थी अर्थात् अपवित्र थी; परन्तु क्या किसी भी न्यायालय में, यदि वह न्यायालय तानाशाही व्यवस्था का हिस्सा नहीं है, अपराधी को अपनी सफाई का अवसर दिए बिना उसकी सजा तय की जा सकती है? और फिर राम तो आदर्श राज्य के संस्थापक थे; उनके यहाँ यह अनीति कैसे हुई? कम से कम एक बार सीता से पूछ तो लेना चाहिए था, लेकिन राम ने ऐसा नहीं किया।

अब सवाल यह भी है कि ऐसा राम ने क्यों नहीं किया?

इसका कुछ उत्तर डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया ने देने की कोशिश की है। उन्होंने 'रामकथा' में लिखा है –

''राम आज बहुत उद्विग्न थे, नींद उनकी आँखों से कोसों दूर भाग गई थी, अनगिनत विचारों में उनका मनपंछी तीव्रगति से विचरण कर रहा था। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ से कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें, क्या न करें।''

राम पशोपेश में इसलिए हैं कि आज तक सीता ने कष्ट ही कष्ट सहन किए हैं और अब जब सुख पाने का अवसर आया है, तो मैं उसे त्याग रहा हूँ। यही कारण था कि उनमें सीता से आँख मिलाने की या सामना करने की क्षमता ही नहीं थी कि वे सीता को बुलाते और कारण बताकर त्यागने के निर्णय की सूचना देते।

दूसरा एक कारण यह भी था जिसकी ओर कवि ने भी इशारा किया है कि प्रजा के द्वारा सीता की पवित्रता पर शंका करने के बाद राम के मन की भी वह अन्तर्ग्रन्थि खुल गई, जिसमें सीता की अपवित्रता की आशंका

के बीज विद्यमान थे, अन्यथा कोई अपकीर्ति के भय से प्रयास से प्राप्त पत्नी को थोड़े ही छोड़ देता है। कवि ने लिखा है –

सीता सतीत्व में शंका थी,
तो क्यों उसको मैं घर लाया?
सीता यदि परम पुनीता थी,
तो क्यों जनमत से घबराया? ।।५४।।

स्पष्ट है कि जनमत तो बहाना था, राम जनमत के बहाने सीता को अपनी शंका के परवान चढ़ा रहे थे।

उपर्युक्त विवेचन से जाहिर है कि कवि राम और सीता के पौराणिक आख्यान के माध्यम से नारी जीवन की त्रासदी को व्यक्त कर रहे हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि लेखक नारी जीवन की त्रासदी को व्यक्त कर रुक नहीं जाता है, बल्कि उस त्रासदी के प्रतिकार स्वरूप पुरुष को भी नारी के समक्ष निरीह बना देता है।

सत्य तो यह है कि नारी की त्रासदी काव्य का पूर्व पक्ष है और नारी के प्रतिकार के सामने पुरुष की निरीहता उत्तरपक्ष है।

पुरुष तब और अधिक निरीह प्रतीत होता है जब नारी के द्वारा उसके अहं पर चोट पड़ती है। जो स्वयं को दाता मानता है, वह याचक की स्थिति में आ जाए; जो स्वयं को विधाता मानकर जिसका परित्याग कर दे, उसी के समक्ष स्वयं परित्यक्त हो जाए; जिस निर्ममता का व्यवहार वह नारी के साथ करे, ठीक वैसा ही व्यवहार नारी से प्राप्त हो, तभी अहं विच्छिन्न होता है और वह परिताप करने की स्थिति में आ जाता है और उसका नारी–भाग्य–विधाता होने का भ्रम टूटता है।

तभी वह अहसास होता है, जो राम को हुआ –

नारी कोमल को कोमल है,
पर निष्ठुर को निष्ठुर महान।
नर के अनुरूप रही नारी,
जाना मैंने नारी विधान।।८०।।

कवि ने यह भी अहसास दिलाने की कोशिश की है कि पुरुष की अपेक्षा नारी में प्रेम, करुणा, धैर्य आदि भावनाएँ अधिक विशद रूप में होती हैं। वह अपने प्रति अत्याचारी प्रेमपात्र को भी क्षमा कर देती है। सीता ने भी राम के अपराध को कर्मोदय के खाते में रखकर 'क्लीन चिट' दे दी। यह सीता की महानता थी।

शिल्पीय संरचना –

''सृजन के क्षण अलौकिक होते हैं, मात्र अनुभव की सम्पदा होते हैं; इनको तब तक व्यक्त होने की अपेक्षा नहीं होती है, जब तक कि वे गहरे और व्यापक होकर एक निश्चय से युक्त नहीं हो जाते हैं। ये सर्जक के भीतर तपते-रचते अचानक बाहर आने को मचलने लगते हैं और सर्जक अनुभव लोक से अभिव्यक्ति के द्वार पर आकर दस्तक देने लगता है। अनुभव जितना गहरा और भारी होता है, अभिव्यक्ति उतनी ही सशक्त-ईमानदार और विश्वसनीय होती है।''

डॉ. हरिचरण शर्मा के इस कथन के आलोक में यदि 'पश्चात्ताप' की शिल्पीय संरचना के अंतःसूत्र खोजने का प्रयास करें तो पाएँगे कि कवि ने राम को अपनी संवेदनाओं का वाहक भर बनाया है, संवेदनाएँ स्वयं कवि की हैं और उन्हीं को व्यक्त करना कवि का उद्देश्य है।

इसलिए कृति का आचमन करते समय पाठक यदि किसी शैल्पिक चमत्कार की अपेक्षा करेगा तो अंततः निराश ही होगा; क्योंकि यहाँ अभिव्यक्ति नहीं, अनुभूति मुख्य है; शिल्प नहीं, अपितु संवेदना मुख्य है।

ध्यातव्य है कि मैं यहाँ शिल्प की गौणता की बात कर रहा हूँ, अभाव की नहीं। यहाँ वह शैल्पिक कीमियागारी नहीं है, जो पाठक को चमत्कृत कर दे; क्योंकि शिल्प कवि के लिए साधन है, साध्य नहीं। फिर भी उनका अभिव्यंजना कौशल उनकी अनुभूति के संप्रेषण में पूरा सफल रहा है। अभिव्यंजना शिल्प में सबसे पहले भाषा की बात करते हैं।

भाषा, अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है, जो अनुभूत सत्य को शाब्दिक आकार देता है। यह माध्यम यदि सशक्त हो तो अनुभूति की अभिव्यक्ति

पूरी और सही होती है। कवि इस तथ्य को जानते हैं; इसलिए शब्द के भीतर छिपे हर अर्थ को उकेरने का प्रयास करते हैं।

कवि की भाषा सरलता, चित्रोपमता, स्पष्टता, वातावरण की अनुकूलता, अकृत्रिमता, भावानुकूलता आदि गुणों से युक्त है।

यद्यपि कवि ने पौराणिक आख्यान का आश्रय लेकर काव्य रचना की है, अतः तदनुरूप तत्सम शब्दावली बाहुल्य के साथ प्रयोग की है; किन्तु भाषा की संस्कृत निष्ठता होते हुए भी जिन शब्दों का प्रयोग किया है, वे खड़ी बोली के सामान्य व्यवहार में बहु प्रयुक्त हैं; इसलिए कठिनाई का आभास नहीं देते हैं। साथ ही भाषा की सरलता बनाए रखने के लिए आवश्यकतानुसार तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का भी प्रयोग किया है। तत्सम शब्दावली के सुन्दर गुम्फन की दृष्टि से इस छन्द को देखें –

आप न करें विकल्प विशेष,
सभी कुछ निश्चित हैं संयोग।
बात बस इतनी ही है नाथ!,
मिला देते सत् का संयोग।।२३।।

इसीप्रकार तद्भव शब्दावली का प्रयोग इस छन्द में किया है –

कहा इतना ही सीता ने,
नहीं अपराध तुम्हारा है।
करम फल पूरब का जानो,
करमबल सबसे न्यारा है।।१९।।

करमबल, पूरब, न्यास, सबसे, मुखड़ा, नाता, जोड़ा, परख, जाँच आदि शब्द भाषा की सरलता में वृद्धि करते हैं; इसीप्रकार अरबी-फारसी के बहु प्रचलित शब्द, जो खड़ी बोली का हिस्सा हैं, प्रयुक्त किए हैं, जैसे – रग, यकीन, जहान, नजीर आदि।

यद्यपि कवि ने सरलता का आद्यंत ध्यान रखा है, पर जहाँ सामासिक या संधिज शब्दों का प्रयोग किया है या नवीनता के व्यामोह में अप्रचलित

शब्दों का प्रयोग किया है, वहाँ भाषा कठिन हो गई है। जैसे – शोकानल, अग्निपरीक्षा, जनकसुता, सगद्‌गद्, सीतेश, अग्निशिखा, वणिकवृत्ति आदि शब्दों का प्रयोग, किन्तु संपूर्ण काव्य में ऐसे स्थल बहुत कम आए हैं।

'पश्चात्ताप' की चित्रात्मकता भी प्रशंस्य है; क्योंकि इसमें कल्पना के साथ समर्थ और सशक्त भाषा का भी योग रहता है। चित्रात्मकता के साथ यदि नादात्मकता हो तो सोना और सुहागा का मणिकांचन संयोग होता है। सीता के जाने के अवसर पर संपूर्ण प्रजाजन की आँखें भींग गईं तो राम निष्प्रह कैसे रह सकते थे, राम भी रो पड़े –

जन जन की आँखें भर आईं,
अर रोम–रोम हो गए खड़े।
सीतेश प्रभु की आँखों से,
टपटप दो आँसू टपक पड़े।।४२।।

राम के आँखों से आँसू गिरते ही भाषा भावानुकूल हो जाती है। कवि उपमाओं की झड़ी लगा देता है, जैसे कि कोई स्रोत वह निकला हो –

वे आँसू थे या मुक्तामणि,
या राम हृदय–परिचायक थे।
या प्रेमलता सिंचक जल थे,
घनश्याम राम के द्रावक थे।।४३।।

कवि ने अपनी बात को प्रभावी बनाने के लिये पुनरुक्ति का प्रयोग कई बार किया है, जैसे – महा अन्याय–महा अन्याय, सीता धन्या–सीता धन्या। चूँकि कवि की भाषा सहज है; अतः कतिपय भाषाई मुहावरे भी काव्य के हिस्सा बने हैं। उदाहरण के लिए –

(१) शील ने रखी सती की लाज।
(२) मनीषा करती तर्क–वितर्क।

(३) न्याय है मुझे आज सपना।
(४) आज उसने मुखड़ा मोड़ा।

इसीप्रकार **'कौआ कोसे यदि शतक बार, तो नहीं पशु मर जाएँगे;** जैसी कहावतें प्रयुक्त हैं।

राम के व्यक्तित्व को प्रामाणिक बनाने के लिए तत्सम प्रधान भाषा में कतिपय सुभाषित, नीतिवचन दिए हैं, जिनमें कवि के मौलिक विचार व्यक्त हुए हैं –

(१) किसी को कैसे दे वह दण्ड,
सत्य की परख नहीं है जिसे।
बिठा कैसे देते हैं लोग,
न्याय के सिंहासन पर उसे।।
(२) विगत भव में जो बाँधे कर्म,
वही देते फल इस भव में।
(३) करे सो भरे यही है सत्य।
(४) सभी कुछ निश्चित हैं संयोग।
(५) जनता को चाहे खुश करना।
तो न्याय नहीं करता जन है।
(६) जिसको है न्याय नहीं आता,
वो अधिकारी ना शासन का।
(७) जन नायक तो उसको कहिये,
जो न्याय तुला पर तौल सके।
जनता के मन को ना देखे,
बस न्याय नेत्र ही खोल सके।।
(८) यदि न्याय पक्ष अपना सच हो,
चाहे जनगण विद्रोह करे।
चाहे सुमेर भी हिल जाए,
पर नहीं न्याय से वीर फिरे।।

(९) अब तक तो समझा था मैंने,
नारी ही होती परित्यक्त।
अन्याय देख कर पतिवर का,
हो जाती वह नर से विरक्त।।
(१०) नारी का यह वैराग्य प्रेम,
कर देता नर का बहिष्कार।
जिसको जग कहता है अबला,
सबला हो जाती शील धार।।
(११) नारी कोमल को कोमल है,
पर निष्ठुर को निष्ठुर महान।
नर के अनुरूप रही नारी,
जाना मैंने नारी विधान।।
(१२) नारी है कितनी त्याग शील,
नररत्नों को पैदा करके।
जो उसको देवे त्रास महा,
चल देती उसको दे करके।।

अलंकारिकता की दृष्टि से कवि ने प्रचलित सभी अलंकारों का प्रयोग किया है; पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, पुनरोक्ति, समासोक्ति आदि अलंकारों का विशेष प्रयोग किया।

उदाहरण के लिए हम उपमा के कतिपय प्रयोग देख सकते हैं –

सब सूना–सूना लगता है,
प्रासाद खण्डहर से लगते।
अमृत भी विष सा लगे आज,
सब भोग व्याल सम हैं डसते।।१०१।।

अथवा संदेह का प्रयोग देखें –

वे आँसू थे या मुक्तामणि,
या राम हृदय परिचायक थे।

या प्रेमलता के सिंचक जल थे,
घनश्याम राम के द्रावक थे।।४३।।

उत्प्रेक्षा –

विगत भव में जो बाँधे कर्म,
वही फल देते इस भव में।
किया होगा कोई अपराध,
भयंकर मैंने गत भव में।।२०।।

असम–अलंकार, जहाँ उपमेय के समान किसी उपमान का निषेध किया जाए, असम अर्थात् जिसके समान कोई अन्य नहीं।

साकेत प्रजा के गूँजे स्वर,
सीता–सी नहीं और अन्या।।१२४।।
अथवा
न रामचंद्र–सा राजा भी,
अब तक जगती में हुआ अन्य।।१२६।।

इसीप्रकार स्मरण अलंकार जहाँ पूर्व घटना का स्मरण किया जाता है – यथा –

उदर में था लवकुश जोड़ा,
तभी निर्जन वन में छोड़ा।।१६।।

दृष्टान्त अलंकार में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है। उदाहरणार्थ –

सज्जन सज्जन ही रहें किन्तु,
हम ही दुर्जन कहलायेंगे।
कौआ कोसे यदि शतक बार,
तो नहीं पशु मर जाएँगे।।८९।।

इसीप्रकार विभावना – कारण होने पर भी कार्य का न होने का प्रयोग दृष्टव्य है –

मेरे अपराध दण्ड में भी,
तू अरे देर क्यों करता है।
तू खूब जला शोकानल में,
रे बन्धु दया क्यों करता है।।७१।।

कहने का भाव यही है कि कवि ने मोटे तौर पर सभी बहुप्रचलित अलंकारों का प्रयोग किया है। यद्यपि कुछ अप्रचलित अलंकार भी है। रूपक काव्य में आद्यंत विद्यमान है ही। भाषा को गौरवान्वित करने के लिए कवि ने 'पश्चात्ताप' में जो अलंकार जुटाए हैं; वे प्रयत्न साध्य नहीं है, वरन सहज, स्वाभाविक रूप से भाषा को प्रवाहमय बनाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

प्रकरण के अंत में यह कहना जरूरी होगा कि आलोच्य कृति के कवि ने भाषा के कुछ निश्चित शास्त्रीय चौखटे स्वीकार किये हैं; क्योंकि रसीली भाषा के धनी, बुन्देलखण्ड क्षेत्र के मूलनिवासी होने के बावजूद रचना में क्षेत्रीय अथवा देशज शब्दों का त्याज्य या अस्पृश्य हो जाना, आश्चर्य पैदा करता है। हो सकता है यह विषय का तकाजा हो; क्योंकि भावों जैसी वाणी मिली, उनके लिए प्रयुक्त भाषा ही उपयुक्त थी।

(६)

'पश्चात्ताप' : छन्द विधान –

छन्द का काव्य के उस तत्त्व का नाम है, जिसमें वर्णों या मात्राओं की संख्या निर्धारित रहती हैं; गुरु–लघु का क्रम, यति–गति की व्यवस्था निर्धारित हो।

'पश्चात्ताप' की रचना आद्यन्त दो छन्दों में हुई है। प्रारम्भ के ३० छन्दों की रचना शृंगार छन्द में शेष छन्दों की रचना पद्धरिका छन्द में की गई है।

'शृंगार' छन्द सोलह मात्राओं के चार चरणों का सममात्रिक छन्द है। प्रत्येक चरण की सोलह मात्राएँ त्रिकल या द्विकल में विभाजित होती

हैं। सामान्यतः चरण के आरंभ में गुरु का प्रयोग नहीं होता एवं चरणांत में गुरु–लघु का विधान होता है।

छायावादी काव्य में यह छन्द बहुप्रयुक्त छन्द है। उदाहरण के लिए कामायनीकार ने कामायनी का श्रद्धा सर्ग इसी छन्द को समर्पित किया एवं महादेवी के प्रगीत मुख्यतः इसी छन्द में रचे गए हैं। कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए यह छन्द उपयुक्त माना गया है।

दूसरे पद्धरिका छन्द के भी प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं जो चार चतुष्कल में विभाजित होती हैं और अंत में जगण को रखा जाता है। पद्धरिका हिन्दी का अपनी जातीय छन्द है और इसका हिन्दी कवियों ने बहुत प्रयोग किया है। स्वयं कवि ने अपने परवर्ती काव्य सृजन सिद्ध पूजन जयमाला **'जय ज्ञानमात्र ज्ञायक स्वरूप'** और अन्य पूजनों की जयमाला में प्रयोग किया है।

छन्द के रचना–प्रयोग की दृष्टि से रचना अल्पवय साध्य होने के पूर्णतः निर्दोष नहीं रही है, अपितु कहीं–कहीं स्खलन या स्वच्छन्दता भी पाई जाती है।

(७)

पश्चात्ताप : काव्य–रूप –

किसी भी कृति के काव्य रूप का निर्धारण करना एक टेड़ी खीर होता है। कवि अपनी भाव प्रवाहमयता में जिस काव्य की रचना कर देता है, वह बँधे–बँधाए नियमों को अनुरूप हो भी सकती है और नहीं भी। यदि अनुरूपता हो तब तो कोई दिक्कत नहीं होती, न कवि को और न समीक्षक को; पर समस्या तब आती है, जब लक्षणों के साँचे में कृति अटती नहीं और वह नितांत भिन्न लक्षणों के साथ नई विधात्मक अवधारणा की अपेक्षा रखती है।

दूसरी बात यह भी है कि समय के परिवर्तन के अनुसार यदि काव्य के मानदण्डों में परिवर्तन हुआ है तो काव्य-रूप के मानदण्डों को बदलने की अपेक्षा नहीं है?

तीसरे, आधुनिक कवियों की रचनाओं को ध्यान से देखें तो उन्होंने पारंपरिक प्रतिमानों और धारणाओं को युगानुरूप तिलाञ्जलि देकर अपने चिन्तन के अनुकूल सायास संशोधन किया है। महाकाव्य और खण्डकाव्य सरीखी प्रबन्ध काव्य विषयक अवधारणा, जिसमें आद्यंत एक कथा अनुस्यूत हो, सर्गबद्धता, पद्यबद्धता और अन्य पारंपरिक लक्षणों सहित, बदल गई है।

डॉ. हरिचरण शर्मा के शब्दों में कहें तो ''जीवन गत यथार्थ के दबाव, द्वन्द्व-अन्तर्द्वन्द्वमयी स्थितियों से उत्पन्न तनाव और उससे जुड़ी व्यथा-कथा की स्थिति में प्रबन्धकाव्य और महाकाव्य के पूर्व निर्धारित मानदण्डों का सुरक्षित रह पाना कठिन हो गया, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अलंकृति, रसात्मकता, सर्गबद्धता, इतिवृत्तात्मकता, वर्णन प्रियता, सानुबंधकथा आधुनिक प्रबंध काव्यों में या तो है ही नहीं, या अपने अलग चेहरे या भाग-भंगिमा के कारण नए लगते हैं।''

जाहिर है कि वर्तमान प्रबन्ध काव्यों में कथातत्त्व कम और चिन्तन अधिक है, वे किसी कथा के क्रमिक विकास को वर्णित न कर केवल कथा संकेत देते हैं। चारित्रिक अन्तःसंघर्ष प्रमुख हो रहा है और प्रत्येक घटना, स्थिति या प्रसंग का पुनर्मूल्यांकन हो रहा है।

डॉ. हरिचरण शर्मा ने प्रबन्ध रचना में आए बदलाव को इसप्रकार सूत्रित किया है -

''१. प्रबंध में या तो कथा है ही नहीं, है तो कथाभास है, ठोस कथा नहीं, घटनाओं के संकेत मात्र हैं।

२. प्रबंध सृष्टि के दौरान अपनाए गए कथानक यथार्थ स्थितियों से जुड़कर संघर्ष एवं आत्मसंघर्ष हो गए हैं।

३. नाटकीयता के विधान, यथार्थ के आग्रह और स्वप्न के स्थान पर सत्यानुभूति के कारण चारित्र भी यथार्थ एवं मानवीय हो गए हैं।

४. कथा की क्रमिकता की जगह भावों विचारों की एकरूपता प्रमुख हो गई है। सपाट कहानी की जगह प्रश्नाकुलता और विश्लेषण परकता सर्वोपरि हो गई है।

५. भाषा शैली में कल्पना के वैभव के साथ एक वैचारिकता दिखाई देती है।

६. नए प्रबन्धों में कथाधार भले ही पौराणिक ऐतिहासिक हो, किन्तु उसकी व्याख्या नई अर्थदीप्ति से युक्त है।''

प्रबन्धकाव्य के उपर्युक्त सूत्रों को आधार पर ही पश्चात्ताप : खण्डकाव्य के काव्यरूप का निर्धारण करना होगा। सामान्यता शताधिक छन्दों का लघुकाय काव्य प्रबन्ध काव्य के बने बनाए पैमाने से नापा नहीं जा सकता। बल्कि एक बारगी तो यह लगेगा कि यह कोई लम्बी कविता है, परन्तु इसमें आया घटनाओं का सांकेतिक परिवर्तन, घात-प्रतिघात हमें खण्डकाव्य के शिल्प की ओर ले जाते हैं।

आलोच्य कृति को मोटे तौर पर सात भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम भाग में मंगलाचरण एवं कथा परिचय, दूसरे भाग में सीता गमन से पूर्व राम का आत्मालाप, तीसरे भाग में सीता का दीक्षा पूर्व उद्‌बोधन, चौथे भाग में सीता का दीक्षा हेतु गमन, पाँचवें भाग में राम का पश्चात्तापात्मक चिन्तन, छठे भाग में राम के चिन्तन के निष्कर्ष और सातवें भाग में नान्दीपाठ है।

यद्यपि ये विभाग काल्पनिक हैं और कवि के द्वारा नहीं किए गए हैं, केवल अध्ययन की सुविधा हेतु ही बांछित है।

प्रस्तुत कृति में कोई ठोस कथा नहीं है, केवल घटनाओं के संकेत मात्र हैं। राम पूर्वदीप्ति शैली में घटित घटनाओं के चिन्तन-विश्लेषण

करते हैं। किसी सपाट कथानक के अभाव में कृति आधुनिक प्रबन्ध काव्य सृजन की श्रेणी में आ जाती है। संवादों का प्रयोग, सत्वरता, नैरन्तर्य, मंगलाचरण, नान्दीपाठ जैसे प्रयोगों ने नाटकीयता पैदा कर दी है। नायक राम का चरित्र पौराणिक ऐतिहासिक न होकर मानवीय है और यथार्थ की भूमि पर चित्रित है। वह धर्म, समाज, राजनीति जैसे विषयों से संघर्ष कर प्रश्नाकुल होता है और निष्कर्ष का नवनीत भी निकाल लेता है।

इसीप्रकार कथानक का आधार पौराणिक भले ही हो पर, इसके अर्थ-संदर्भ बिलकुल नए और आज के समय से सवाल करते दिखते हैं। इन अर्थों में खण्डकाव्य पूर्णतः आधुनिक है।

(८)

पश्चात्ताप : प्रतीक-सृष्टि –

पश्चात्ताप के संदर्भ में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि रचनाकार का उद्देश्य राम के जीवन के किसी अंश पर विचार करना था या राम और सीता की कथा के माध्यम से जिस धर्म के सिद्धान्तों को अपनी आस्था के साथ आत्मसात किए रहा, उसका प्रकटीकरण है।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में जायसी ने 'पद्मावत' के अंत में एक कड़वक में 'पद्मावत' के प्रतीकार्थों को स्पष्ट करते हुए चुनौती दी थी कि 'बूझ सके तो बूझहु पारहु' अर्थात् समझ सको तो समझो।

इसीप्रकार आधुनिक युग में प्रसाद ने कामायनी की भूमिका में 'मनु को मन का और श्रद्धा को काम का प्रतीक बताते हुए रूपक विधान को स्पष्ट करने की चुनौती दी थी।

यह चुनौती आलोचना बुद्धि के लिए चारे का काम करती रही और वे नए रूपकों को उद्घाटित करते रहे।

आलोच्य कृति के अंत में कवि ने एक छन्द के माध्यम से राम और सीता के प्रतीकार्थ को स्पष्ट किया है –

अरिहंत राम के परमभक्त,
हम आत्मराम के आराधक।
जिनवाणी सीता के सपूत,
भगवान आत्मा के साधक।।१३०।।

यहाँ जिनवाणी रूपी सीता के साथ अन्याय करने वाला, उसके स्वरूप, उसकी पवित्रता को न समझने वाला अपराधी-संसार के बंधनों में बँधा हुआ अपराधी राम बहिरात्मा है। इसीप्रकार सीता के दीक्षोपरांत अपनी भूल को समझने वाला और पुनः उस भूल को न दोहराने की प्रतिज्ञा करने वाला, स्थितिप्रज्ञ राम अन्तरात्मा है। जो यह कहता है –

सीता का कुण्ड मही में था,
मेरा होगा मनमंदिर में।
उसमें था सूखा काष्ठ भरा,
मेरा तन ही होगा इसमें।।११०।।

और अंत में जहाँ साकेत की प्रजा और पृथ्वीतल के रोम-रोम में बसा राम का परमात्मरूप है, जो सभी प्रकार के अन्तर्बाह्य संघर्षों से विरत है।

इसप्रकार मुझे लगता है 'पश्चात्ताप' काव्य के माध्यम से कवि ने जिनवाणी माँ के उद्बोधन के द्वारा आत्मविकास की प्रक्रिया का उद्घाटन किया है।

और अन्त में –

'पश्चात्ताप' खण्ड काव्य के लेखक डॉ. भारिल्ल मेरे गुरु हैं, मार्गदर्शक हैं; अतः स्वाभाविक रूप से उनकी ख्याति के अनुरूप दर्शन और अध्यात्म को तो उनके मुख से अनेकों बार सुना एवं समझा था, साहित्य के क्षेत्र में उनके दखल को इस कृति के माध्यम से पहली बार अनुभव किया। लिहाजा पहली नजर में ही मुझे यह रचना बेहद आकर्षक लगी। मुझे लगा कि यह उनकी रचनात्मकता, विशेष रूप से काव्य सृजन

सम्बन्धी, का अधिक जीवन्त प्रमाण होगा। अतः रचना को पढ़ते ही मैंने कवि से उसे छपाने का आग्रह किया, जिसे शायद मुझे बहलाने के लिए (मुझे ऐसा लगा) शिथिल मन से स्वीकार किया; क्योंकि कवि इसे अल्पवय में लिखी होने से अधिक प्रौढ़ नहीं मानते, साथ ही वे जिस अध्यात्म के प्रवक्ता हैं, उससे इसका वास्ता थोड़ा दूर का था।

बाद में शायद अन्य अनुरागियों ने भी आग्रह किया होगा, इसीलिए यह रचना प्रकाशित हो सकी।

मुझे यह रचना को तीन प्रतियों में क्रमशः मूल, संशोधित एवं पुनः संशोधित प्राप्त हुई। लेखक ने अपने मन की संतुष्टि के लिए मामूली फेर-बदल भले ही किया हो, लेकिन काव्य की मूल आत्मा, उसके प्रतिपाद्य पर उस संशोधन का कोई खास असर नहीं पड़ा; क्योंकि यह अंतिम रूप में भी कतिपय भाषाई भूलों के सुधार के बावजूद वैसी ही थी, जैसी कि मूल प्रति थी अर्थात् कैशोर्य भाव प्रौढ़ता की आँच में पका नहीं था।

यद्यपि मैंने कवि की परवर्ती काव्य रचनाओं का भी आस्वादन किया; परन्तु जैसी ताजगी और मौलिकता का आभास इस रचना में हुआ, वैसा परवर्ती रचनाओं में नहीं हुआ। मुझे कवि ने गुरुवत् इस रचना पर अपनी राय देने के लिए आदेश दिया था; किन्तु रचना को पढ़कर ऐसा मन रमा कि यह आलेख तैयार हो गया।

अंत में, यही भावना है कि रसिकजन इस काव्यामृत का आचमन कर इसके आनंद में डूबें, तैरें, पार हों। अस्तु!

प्रो. संजय कुमार जैन 'भोगाँव'
प्रवक्ता एवं विभागाध्यक्ष
स्व. राजेश पायलट राजकीय महाविद्यालय,
बाँदीकुई, दौसा (राजस्थान)

लेखक के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

समयसार (ज्ञायकभाव प्रबोधिनी)	५०.००	मैं कौन हूँ	४.००
समयसार अनुशीलन भाग-१	२५.००	निमित्तोपादान	३.५०
समयसार अनुशीलन भाग-२	२०.००	अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	३.००
समयसार अनुशीलन भाग-३	२०.००	मैं स्वयं भगवान हूँ	४.००
समयसार अनुशीलन भाग-४	२०.००	रीति-नीति	३.००
समयसार अनुशीलन भाग-५	२५.००	शाकाहार	२.५०
समयसार का सार	३०.००	तीर्थंकर भगवान महावीर	२.५०
प्रवचनसार का सार	३०.००	चैतन्य चमत्कार	२.००
प्रवचनसार अनुशीलन भाग-१	३०.००	गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
पं. टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००	गोम्मटेश्वर बाहुबली	२.००
परमभावप्रकाशक नयचक्र	२०.००	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	२.००
चिन्तन की गहराइयाँ	२०.००	अनेकान्त और स्याद्वाद	१.००
महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	१५.००	शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर	१.५०
धर्म के दशलक्षण	१६.००	बिन्दु में सिन्धु	२.००
क्रमबद्धपर्याय	१२.००	बारह भावना एवं जिनेंद्र वंदना	२.००
बिखरे मोती	१६.००	कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद	१.००
सत्य की खोज	१६.००	शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद	१.००
अध्यात्मनवनीत	१५.००	समयसार पद्यानुवाद	३.००
छहढाला का सार	१५.००	योगसार पद्यानुवाद	०.५०
आप कुछ भी कहो	१०.००	समयसार कलश पद्यानुवाद	३.००
आत्मा ही है शरण	१५.००	प्रवचनसार पद्यानुवाद	३.००
सुक्ति-सुधा	१८.००	द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	१.००
बारह भावना : एक अनुशीलन	१५.००	अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद	३.००
दृष्टि का विषय	१०.००	अर्चना जेबी	१.००
गागर में सागर	७.००	कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)	१.२५
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	८.००	शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)	१.००
णमोकार महामंत्र : एक अनु.	१०.००	बालबोध पाठमाला भाग-२	३.००
रक्षाबन्धन और दीपावली	५.००	बालबोध पाठमाला भाग-३	३.००
आ.कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम	५.००	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-१	४.००
युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-२	४.००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	१२.००	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-३	४.००
पश्चात्ताप	७.००	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१	५.००
		तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२	४.००

भारतीय नारी : डॉ. भारिल्ल की दृष्टि में

बिना डींग हाँके दुर्भाग्य से लड़ने की जितनी क्षमता नारियों में सहज देखी जा सकती है; पुरुषों में उसके दर्शन असंभव नहीं तो दुर्लभ तो हैं ही। **– आप कुछ भी कहो, पृष्ठ–५६**

पण्डितों के प्रवचनों में वह सामर्थ्य कहाँ, जो नारियों के आँसुओं में है। वे अपनी बात को आँसुओं से भीगी भाषा में रखने में इतनी चतुर होती हैं कि बड़े-बड़े धर्मात्मा भी अपने को पापी समझने लगें। **– आप कुछ भी कहो, पृष्ठ–७५**

नारी जैसी एकनिष्ठता आप अन्यत्र कहीं नहीं पा सकते। वह जिस पर रीझ गई, सो रीझ गई, वह उसी में तन्मय हो जाती है। **– सत्य की खोज, पृष्ठ–८२**

सहज श्रद्धावान नारी में यदि समुचित शिक्षा के सद्भाव से विवेक का भी विकास हो जावे तो सोने में सुगंध हो जाने की कहावत चरितार्थ हो जावे। **– सत्य की खोज, पृष्ठ–१३**

जबतक सहज श्रद्धालु नारी जाति शिक्षित नहीं होगी, तब तक उन्हें ढोंगी साधुओं और धूर्त महात्माओं से बचाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। **– सत्य की खोज, पृष्ठ–६२**

महासती सीता को आदर्श माननेवाली भारतीय ललनाओं को यह याद रखना चाहिए कि अपने ही लोगों के असद्व्यवहार से विरक्त सीता ने आत्महत्या का मार्ग न चुनकर आत्मसाधना का रास्ता अपनाया था। **– आप कुछ भी कहो, पृष्ठ–८३**

– ● –

पश्चात्ताप